



साहित्य समय



साहित्य, शिक्षा व पर्यावरण की शोध-मासिकी

VISIT...

LANZAROTE
Caliente.COM



शिवशंकर शुक्ल 'लाल'

जन्म : 13 अगस्त 1950
 पुण्यतिथि : 25 अप्रैल 2021
 जन्म स्थली : देवरी बुजुर्ग, फतेहपुर, (उ.प्र.)

प्राथमिक शिक्षा दीक्षा : पैतृक गांव में संपन्न हुई। तत्पश्चात पिता श्री सुखदेव प्रसाद शुक्ल के साथ छिंदवाड़ा आगमन। शेष शिक्षा छिंदवाड़ा में पूर्ण हुई, एवम् 1972 में शिक्षक के रूप में शासकीय सेवा में आगमन। साहित्यिक गतिविधियों में प्रारंभ से ही रुचि। हास्य व्यंग्य के साथ ही काव्य की विभिन्न विधाओं में सशक्त दखल, कुशल मंच संचालन का अनुभव, शिक्षा विभाग के विभिन्न पदों में रहते हुए, अगस्त 2012 को प्रधान पाठक के रूप में सेवा निवृत्त।

हम शोषक हैं, तुम शोषित हो

हम शोषक हैं तुम शोषित हो, बात नहीं बेमानी है।
 प्रजातंत्र में तुम्ही दूध हो, दूध मिले हम पानी हैं।।
 हम जनता के सेवक हैं, ये कोरी कथा कहानी है।
 सेवा कर मेवा खाने की, अपनी प्रथा पुरानी है।।
 सत्ता की खातिर भाई ने, भाई को मरवाया है।
 बेटों ने अपने बापों को, जेलों में डलवाया है।।
 ऐतिहासिक सत्ता की संस्कृति को, कैसे झुठलायेंगे।
 हम अपने हथकंडो के बल, सत्ता में आ जायेंगे।।
 मातृभूमि के लिये समर्पण का, आदर्श तुम्हारा है।
 कुर्सी से चिपके रहने का, ही उद्देश्य हमारा है।।
 पंचतंत्र के सिद्धान्तों पर, तुमको ही चलना होगा।
 साम-दाम और दंड-भेद से राज हमें करना होगा।।
 भूखे रहकर जीने का, जितना अभ्यास तुम्हारा है।
 छीन-छीन कर खाने का, उतना अभ्यास तुम्हारा।
 हरा-भरा यह देश आपका, चारागाह हमारा है।
 जन-गण-मन अधिनायक गाना, यह कर्तव्य तुम्हारा है।
 हम नर हैं, तुम नारी हो और लोकतंत्र की गाड़ी हो।
 हम दुःशासन के वंशज, तुम दुपद-सुता की साड़ी हो।।
 जब चाहे हम चीर-हरणकर अपनी हवस मिटाते हैं।
 अनाचार और दुराचार के, पिताश्री कहलाते हैं।।
 जो भारत के भाग्य-विधाता, उनको नमन तुम्हारा है।

सुजलाम्-सुफलाम् से परिपूरित, सारा चमन हमारा है।।
 हम लोगों का धर्मों से, बड़ा करीबी नाता है।
 धार्मिक दंगे भड़काने का, श्रेय हमें ही जाता है।।
 मेहनतकश लोगों के चेहरे, सदा-सदा से सूखे हैं।
 कोई भत्ता के तो कोई, बस सत्ता के भूखे हैं।
 तुम शांति की शुभ्र ज्योत्सना, हम अशांति के अग्रदूत हैं।
 तुम भारत के वर्तमान हो, हम भविष्य हैं हमी भूत हैं।।
 हम लोगों को देशभक्ति से, क्या देना-क्या लेना है।
 देश की खातिर सब कुर्बानी, केवल तुमको देना है।।
 चूहे जैसा कभी रहा वो, भ्रष्टाचार हुआ हाथी है।
 बैंक घोटाला करने वाला, नीरव भी म्हारो साथी है।।
 प्यारा हिन्दुस्तान हमारा, न्योछावर हो प्यार तुम्हारा।
 आज़ादी की बर्बादी, करने का है अधिकार हमारा।।
 देश भक्तों के हाथों हम गर, शोषक मारे जायेंगे।
 रक्तबीज बनकर जनता के, हम फिर द्वारे आयेंगे।
 हम लोगों के चंगुल से यदि, भारत को छुड़वाना है
 सबसे पहले भ्रष्टाचार को, जड़ से तुम्हें मिटाना है।।
 इसे मिटाने की खातिर है, बीड़ा तुम्हें उठाना होगा।
 जन-जन में है देश प्रेम के, पावन भाव जगाना होगा।।
 यदि तुम जागे तो हम शोषक, कभी नहीं सो पायेंगे।
 कुर्सी गयी तो सदमे से हम, खुद-ब-खुद मर जायेंगे।।
 रामराज्य का सपना होगा, फिर जाकर साकार यहाँ।
 शोषित-पीड़ित का भी होगा, तब जाकर उद्धार यहाँ।।

प्रेरक

संतोष चौबे

(कुलाधिपति रबीन्द्र नाथ टैगोर वि.वि.)

प्रो. डॉ. पुष्पिता अवस्थी

(नीदरलैंड)

प्रमुख संरक्षक

नंदिताराव पांडे

(दिल्ली)

परामर्शक

राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर', सजल मालवीय, अवधेश तिवारी

संपादक

प्रो. गोपेश वाजपेयी

मो.- 9424300234

सह संपादक

वर्तिका वाजपेयी

प्रबंध संपादक

शिवम् वाजपेयी

अक्षर संयोजन : वी.पी. दुबे, आकल्पन : युगांशु मालवीय, रेखांकन : प्रो. अन्नपूर्णा शुक्ला

सदस्यता सहयोग :

द्विवार्षिकी : 500 रु. मात्र / पंचवार्षिकी : 1200 रु. मात्र

आजीवन : 3,000 रु. मात्र / संरक्षक : 11,000 रु. मात्र

(डाक व्यय सहित)

ड्राफ्ट या चेक 'गोपेश कुमार वाजपेयी' भोपाल के नाम देय होने चाहिए
'साहित्य समय' के लिए बचत खाता संख्या : 11235964218,
एस.बी.आई. की शाखा (IFSC - SBIN0011787) में नगद राशि जमा
कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

सम्पर्क: 57, सौम्या इस्टेट्स, बी.डी.ए. रोड, अवधपुरी

भोपाल - 462022 (मध्यप्रदेश)

मो. 9424300234 (व्हाट्स एप), 7000795536

ई-मेल : gopeshvajpayee@gmail.com

sahityasamay@gmail.com

RNI-TC: MPHIN35592

साहित्य समय

साहित्य, शिक्षा व पर्यावरण की शोध-मासिकी

वर्ष : 2, अंक : 10, अक्टूबर 2021

अनुक्रम

साक्षात्कार -

पं. विश्वम्भरनाथ पांडेय के साथ गोपेश वाजपेयी की बातचीत - 5

लघुकथा -

मंत्रिमंडल का विस्तार - मुकेश कुमार ऋषि वर्मा - 17

कहानी -

केती-कोती - पुष्पिता अवस्थी - 18

आलेख -

युगानुभूति के चित्रे मैथिलीशरण गुप्त - राजेन्द्र परदेसी - 23

लघुकथा -

सूर्य लोक में संपाती - अवधेश तिवारी - 27

कविता/गीत/दोहे -

अशोक 'अंजुम' - 28

लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर' - 29

बिहारी लाल सोनी 'अनुज' - 30

उषा किरण - 31

गजल

धर्मेन्द्र गुप्त - 32

लघुकथा -

आत्म-सम्मान - प्रीति मिश्रा - 33

कहानी -

बताते-बताते - राम नगीना मौर्य - 34

कहानी -

बेवफाई - डॉ. प्रज्ञा शारदा - 38

समरस-समय

युगनिर्माता : महर्षि अरविंद घोष - प्रो. किशोरीलाल व्यास नीलकंठ - 40

अपना घर समरसता का केंद्र बनना चाहिए - के. श्याम प्रसाद - 45

समीक्षा -

'समीक्षा के नये आयाम' - प्रो. डॉ. शरदनारायण खरे - 46

आयोजन - 48

पाठक-समय - 50

‘प्रणाम’

जिंदगी न तकदीर है, न तदबीर है। यह इन दोनों के बीच की रस्सी कूद है, बाधा-दौड़ है....जीवन के खेल में जो संभलकर खेल सका, वही विजय को वरण करता है, शेष तो बस जिंदगी गुजारकर जी भर लेते हैं।

समय.... भविष्य के रण में बेतहाशा भागता हुआ समय। वर्तमान की हथेली पर विगत के पदचिह्न छूटे हैं, आगत के सपने दरवाजे पर दस्तक दे रहे हैं। क्षितिज के उस पार से एक प्रश्न बार-बार झाँकता है- “कैसा होगा कल”? ‘कल’ कल-कल करता हुआ, ‘कल’ के पहियों पर दौड़ता हुआ प्रकाश के साथ आया।

‘पर्व’ हम सबके समय के अनुभूतियों के रंगीन पंख होते हैं, पर्व शब्द से ही पर्वत बना है। पर्व हमें, और हमारे उत्साह को चरम पर ले जाते हैं।

बीते समय में महामारी के समय में हम सब डर कर दूर-दूर रहे, लॉकडाउन में लॉक रहे, अब हम सब पर्व को सावधानी और सुरक्षा के साथ मनाने वाले प्रफुल्लित हैं। मानव और मानवी दोनों थिरकने का मन बना चुके हैं। जिंदगी किसी फूल की तरह महकती है! प्रकृति गुनगुनाती है, कुछ अनजाने नग्मे, !! आँखों में कई मासूम सपने बसे होते हैं। सचमुच जीवन प्यार का ही दूसरा नाम है। हम खुद से प्यार करें। खुद को स्वस्थ रखें, खुद को सँवारे खुद को दुरुस्त करें तो सब कुछ अपने आप ही ठीक-ठाक ही हो जाएगा।

जिंदगी अपनी बँधी मुट्ठी खोल देती है। मुट्ठी में जिंदगी का जादू बंद है। एक शक्ति जिसकी हम सब आराधना कर रहे हैं, वह हमें जीवन का मंत्र हमारे कान में सुना जाती है। जीवन दिखाता है- कुछ नए मार्ग। हम हारते भी हैं, लेकिन फिर विजय पथ पर बढ़ना आरंभ कर देते हैं, प्रारंभ होती है, अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ने की कोशिश। एक संघर्ष....जीवन का उल्लास पा लेने का, एक सफल प्रयास, जीवन का गीत फिर गुनगुना लेने का। नवजीवन यही है। एक श्वास। एक आश। एक विश्वास। कभी ठहरी जिंदगी तो कभी सरपट दौड़ती हुई। जीवन सचमुच सबसे सुंदर पहेली है। यही अपना जीवन भी हर पल चौंकाता है। हम समय ही नहीं पाते और किसी न मोड़ पर परिवर्तित हो जाती है। कब कौन समझ पाया है, इसके रूप को जीवन को जानने-समझने में कभी-कभी तो पूरी आयु ही पूरी हो जाती है। जीवन का अर्थ है....इसे भरपूर जी लेना ही। वह भी मात्र अपने लिए ही नहीं, इस सारे मानवता के लिए, समाज के लिए, अपने देश के लिए भी। उम्र के सफर में समय के पड़ावों से सरकता यह जीवन एक बार अपनी मंजिल पर पहुँच कर थम जाता है। इसे ही हम अंत कहते हैं। आरंभ की कला है, तो अंत भी कला ही है। जीवन को उत्साह से जी लिया जाए तो काली रात कभी भी हमें भयाकांत नहीं कर सकती। जीवन-मृत्यु ऊपर वाले के हाथ में है।

इस दीप पर्व के प्रकाश में हम सब सकारात्मक सोचें, सकारात्मक करें, सकारात्मक रहें, यही पर्व की भी सार्थकता है। सकारात्मक पढ़ना और सकारात्मक लेखन भी समय की अपेक्षा। आप सभी की ‘दीपपर्व’ की सकारात्मक मंगलकामनाएँ। श्रीलक्ष्मीजी की कृपा आप पर सदैव बनी रहे।

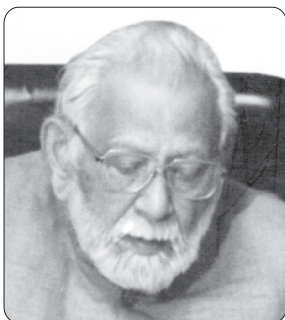
– प्रो. गोपेश वाजपेयी
संपादक

उमरेठ (छिन्दवाड़ा) के गाँधी

(स्वतंत्रता का 75वां जयंती वर्ष)

एक स्वाभिमानी और जीवट व्यक्तित्व का संघर्ष

पं. विश्वम्भर नाथ पांडेय के साथ गोपेश वाजपेयी की बातचीत



पं. विश्वम्भर नाथ पांडे का जीवन अनेकानेक घटनाओं का साक्षी रहा है। समकालीनता में वे घटनाएँ न केवल असाधारण रहीं बल्कि पराधीन भारत में देशवासियों के लिए अत्यंत असहनीय एवं दुष्कर भी। स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन में महात्मा गाँधी से प्रेरित होकर, भारतीय ज्ञान परम्परा और साहित्य तथा संस्कृति में रूझान रखने वाले व्यक्तित्व की यह ऐसी यात्रा थी जिसने उन्हें अनेकानेक अनुभवों से समृद्ध किया। अपनी उम्र के 70 वें वर्ष में उन्होंने लगभग 1940 तक के अपने जीवनानुभवों को रेकॉर्ड कराते हुए एक लम्बी बातचीत की। पांडे जी की सुपुत्री श्रीमती नन्दिता राव पांडे आदरणीया बुआ जी ने यह दुर्लभ संवाद, प्रकाशन के लिए उपलब्ध कराया है। उनके प्रति कृतज्ञतापूर्वक भाव के साथ हमने पिछली किस्त प्रकाशित की थी अब इसे आगे प्रकाशित किया जा रहा है।

- प्रो. गोपेश वाजपेयी

प्रो. गोपेश वाजपेयी :- असहयोग आन्दोलन के दौरान हिन्दू-मुसलमानों में इतनी सद्भावना और भाईचारा था, लेकिन बाद में उनमें खिंचाव आया तो इसके क्या कारण थे ?

पांडे :- पहली चीज जिसने लोगों के दिमाग पर असर डाला और वह असहयोग आन्दोलन के दौरान ही था, वह था केरल में मोपला विद्रोह। मोपला बड़े बहादुर लोगों में से थे और आजादी के दीवाने थे। खिलाफत और स्वराज का संदेश जब उन तक पहुँचा तो उनके दिलों में एक उत्साह और उमंग की लहर आई और उन्होंने करीब-करीब अपने को यह मान लिया कि वे आजाद हैं। आजादी का मतलब उन्होंने जो भी कुछ समझा उसके मुताबिक जमीनों का बँटवारा हुआ। केरल में जमीन की बड़ी तंगी थी, आज भी एक-एक एकड़ जमीन खरीदने के लिए 15-15 हजार रुपये और उससे भी ज्यादा लोग खर्च करने को तैयार हैं। वहाँ सब किसान

मुसलमान थे। और निन्यान्बे प्रतिशत जमींदार हिन्दू थे। अब जिनकी जमीनें इस तरह से बँट गई, उन्होंने सरकार से अपील की। सरकारी फौज आई। सरकारी फौज और बड़े जमींदार, इन दोनों ने किसानों को “हंटआउट” करना शुरू किया, उसका नतीजा यह हुआ कि जो आन्दोलन अहिंसात्मक तरीके से शुरू हुआ था, वह शीघ्र ही हिंसा में परिवर्तित हो गया। चूँकि मालाबार में घने जंगल हैं, छिपने की जगह हैं और वहाँ के जंगलों से बड़ी आसानी से गुरिल्ला लड़ाइयाँ चल सकती हैं तो लड़ाई होने लगी। लड़ाई जब देर तक चलने लगी और इन्हें खाने-पीने की दिक्कतें होने लगीं, तो इन्होंने चाहा कि आसपास के गाँवों में जो दुकानदार हैं, जिनमें अधिकांश हिन्दू दुकानदार हैं, उनसे भोजन सामग्री मिले। इनके पास पैसा तो था नहीं। परिणामस्वरूप जब इनको खाने-पीने का सामान नहीं मिला तो इन्होंने लूटमार शुरू कर दी। लेकिन शीघ्र ही सरकार द्वारा प्रोत्साहित समाचार-पत्रों और समाचार-पत्रों की एजेंसियों ने जिनमें असोसिएटेड प्रेस का खास हाथ था उन सब चीजों को एक साम्प्रदायिक रूप में हिन्दुस्तान के अखबारों में पेश करना शुरू किया। बड़ी ‘हिरोइक डिटेल्स’ दर्दनाक वाकियात के तौर पर पेश किए कि किस तरह हिन्दुओं पर जुल्म हो रहे हैं, किस तरह हिन्दू तबाह किए जा रहे हैं, किस तरह हिन्दू कत्ल किए जा रहे हैं तो इस तरह के समाचार तमाम अखबारों में छपने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सारे वातावरण में एक खिंचाव पैदा हो गया। मगर चूँकि अभी आन्दोलन पर उस तरह से तो इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन जो तटस्थ लोग थे, जो आन्दोलन में दर्शकमात्र थे, जिनकी सहानुभूति आन्दोलन के साथ थी, और इनकी संख्या करोड़ों में थी, उनके दिलों में एक चीज ऐसी आई कि भई, यह क्या बात हुई, यह तो मुसलमान हिन्दुओं पर जुल्म करने लगे। और फिर वही इतिहास का ताना-बाना शुरू हुआ। तो इस वजह से आन्दोलन में एक अंतर

आया। लोगों के दिलों में भी एक तरफदारी अपने सम्प्रदाय के लिए आई।

इसके बाद जब चौरी चौरा के बाद आन्दोलन स्थगित होने के बाद लखनऊ में 1922 के शुरू में ए.आई.सी.सी. की बैठक हुई। उसमें जिन लोगों ने गांधी जी के प्रति जबरदस्त विद्रोह किया उसमें डॉ. मुंजे भी थे। वैसे जेल से जो समाचार आए उसमें देशबंधु चितरंजनदास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने भी आन्दोलन के इस तरह बंद किए जाने को पसंद नहीं किया और इस सिलसिले में उन्होंने गांधी जी की काफी टीका-टिप्पणी भी की। जब आन्दोलन इस तरह से बंद हो गया तो देश में जो एक उमंग पैदा हुई थी उसको साम्प्रदायिक समाचार-पत्रों ने और समाचार-पत्रों में दिलचस्पी लेने वाली एजेंसियों ने साम्प्रदायिकता की तरफ मोड़ दिया। साम्प्रदायिकता का रूप मिलने से जगह-जगह यह प्रश्न उठने लगा कि यह तो ऐसी समस्या है जिसका कोई-न-कोई हल निकाला जाना चाहिए। चनांचे इस तरह से फिर धीरे-धीरे झगड़ों की शुरुआत हुई। सन 1924 का जो वर्ष आया वह अपने साथ कई जगह दंगे-फसाद लाया, इलाहाबाद में दंगा हुआ जबलपुर में दंगा हुआ, अहमदाबाद में हुआ और फिर दिल्ली भी नहीं बचा। कोहटा में जो दंगा हुआ उसमें दो आदमियों की एक कमेटी बनी थी जिसमें गांधी जी और मौलाना शौकत अली थे लेकिन इसकी कोई ‘एग्रीड रिपोर्ट’ नहीं आई। कोहाट दंगों से पहले गांधी जी जब जेल से छूटे। उनका स्वास्थ्य खराब था तो वह सबसे पहले जुहू में आकर ठहरे, वहाँ लोग उनसे मिले गए, मैं भी पंडित सुंदरलाल जी के साथ उनसे मिलने गया। पंडित सुंदरलाल जी को गांधी जी ने यह कहा कि मैं तो जेल में था मगर जब मैंने तुम्हारे झण्डा सत्याग्रह की बात सुनी तो मुझको बेहद खुशी हुई। तुमने तो बहत अच्छा काम किया। और झण्डा सत्याग्रह से तो सिद्धांतों की विजय की प्राप्ति हुई। वाँ मैंने नेता जी का लम्बा

सिलसिला देखा। जुह में पंडित मोतीलाल जी, सी.आर. दास साहब और सत्यमूर्ति जी भी उनसे मिलने आए। इनके अलावा सैकड़ों लोग उनसे मिलने आते थे और एक ताँता सा लगा रहता था। मैंने देखा कि सौराष्ट्र के राजा भी उनसे बराबर मिलने आते थे और उनसे अपनी रियासतों की बातें कहते थे। सब यह चाहते थे कि गांधी जी कोई ऐसा बयान न दें जिससे कि कौंसिल में जाने का जो कार्यक्रम है, और जिसकी पुष्टि दिल्ली कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में और उसके बाद काकिनाडा कांग्रेस में हो चुकी है, कोई अंतर पड़े। गांधी जी फिर वहाँ से अहमदाबाद आए। अहमदाबाद में ए.आई.सी.सी. की मीटिंग बुलाई गई, मुझे निश्चित तिथियाँ याद नहीं हैं, लेकिन वहाँ भी आपस की बात का एक बड़ा जबरदस्त सिलसिला था। मुझको भी बापू की कुटी में ठहरने का मौका मिला, यानी मैं ठहरा तो हरिभाऊ उपाध्याय के यहां था लेकिन मेरा अधिकतर समय बापू की कुटी में ही बीतता था। वहां दास बाबू और मोतीलालजी आते थे। गांधी जी उनका बड़ा ख्याल रखते थे। मोतीलाल जी जब आए तो उन्होंने उनके खाने का इंतजाम खुद ही किया। माता कस्तूर बा ने स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर मोतीलाल जी को खिलाया। काफी बातचीत हुई, लेकिन उस बातचीत में गांधी जी ने दृढ़ता के साथ यही स्थिति ली कि कौंसिलों का बहिष्कार या असहयोग आन्दोलन के स्थगन का प्रश्न तो आता नहीं, इसका सम्बन्ध तो स्वराज्य से है, और विदेशी सरकार को हम कैसे सहयोग दे सकते हैं। हमें तो उसकी संस्थाओं का बहिष्कार ही करना चाहिए, वह अपने विचारों में अडिग थे। ऑल-इंडिया कांग्रेस कमेटी में इस पर बहस हुई और परिणामस्वरूप संशोधन के रूप में एक प्रस्ताव आया।

गोपीनाथ साहा ने पुलिस कमिश्नर के ऊपर कलकत्ता में जो गोली चलाई थी उस सिलसिले में वह प्रस्ताव था। प्रस्ताव में गांधी जी जाहिर तौर पर यह

चाहते थे कि हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ जो देश में फैल रही हैं, उनसे देश को सावधान करें और फिर से अहिंसा के ऊपर अपनी आस्था प्रकट करें। लेकिन उसमें दास साहब और दूसरे लोगों ने बड़ा विरोध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह प्रस्ताव थोड़े मतों से ही पास हुआ। मोतीलाल जी, दास साहब और दूसरे लोग ए.आई. सी.सी. की बैठक से उठ कर चले गए। फिर डॉ. चोइथराम गिडवानी ने मुझे याद नहीं उन्होंने क्या बात कही लेकिन उनकी बात सुनकर गांधी जी ने यही कहा कि मुझको चोइथराम से यह उम्मीद नहीं थी कि यह मुझको छुरा भोंकेगा और यह कहकर वह रोने लगे। गांधी जी का रोना था कि वहां जितने भी दर्शक या सदस्य थे वह रोने लगे। एक महापुरुष के इस तरह से आँसू निकलें और वह रोएँ तो व दिल को चीरने वाला दृश्य था। फिर जब बैठक समाप्त हुई और दूसरे दिन जब बैठक हुई तो गांधी जी ने कहा कि जो प्रस्ताव पास हुआ है वह बहुत थोड़े मतों से पास हुआ है, और अगर मोतीलाल जी और दास बाबू भी रहते तो शायद वह बहुत ही कम मतों से पास होता। तो मेरे लिए उचित नहीं है कि मैं इसका लाभ उठाऊँ, इसलिए मैं यह समझता हूँ कि इस प्रस्ताव को हम यही समझें कि यह पास नहीं हुआ। यह मेरा एक दुसरा अनुभव था। जनतंत्र में बहुमत और अल्पमत से कोई चीज पास होती है, लेकिन वह एक भावना थी, गांधी जी ने उसको एक दूसरा रूप दिया कि बहुमत इस तरह से भी नहीं होना चाहिए कि वह अल्पमत पर हावी हो और अल्पमत के विचारों और संजीदगी की कोई कद्र न करे। तो वहाँ हम लोग ठहरे हुए थे वहाँ आपस की बहस का यह भी एक विषय था कि चीजों को देखने का यह एक नया तरीका है कि कैसे हम बहुमत और अल्पमत की निष्ठा और उनके व्यवहार का समन्वय करें।

बहरहाल, दास बाबू और मोतीलाल जी वहाँ जो बात चाहते थे वह उनको प्राप्त हुई, यानी कौंसिलों के

बहिष्कार का जो फैसला गांधीजी ने उसके पहले अपने बयानों में किया था, उस पर उन्होंने फिर से गौर किया, और गौर करने के बाद यह कहा कि अगर दास बाबू और मोतीलाल जी यही समझते हैं कि कौंसिलों द्वारा स्वराज निकट लाया जा सकता है तो इनको ऐसा मौका मिलना चाहिए कि वे अपना प्रयोग करें। कांग्रेस के ऊपर से एक बहुत बड़ा संकट टल गया, नहीं तो वह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें कांग्रेस विभाजित हो जाती और कितने लोग निष्ठा के साथ इधर रहते कितने उधर रहते और देश में 'कन्फ्यूजन' और बढ़ा देना कुछ मुनासिब बात नहीं होगी, सारी बातें समझकर ही उन्होंने यह फैसला किया।

मगर उसके बाद परिस्थिति ऐसी हो गई है कि लोग कुछ हतोत्साहित हो गए। लोग जो स्वराज की, आजादी की लड़ाई, सत्याग्रह की फिर से शुरुआत का सपना देख रहे थे, उनको एक धक्का सा लगा। कांग्रेस के कार्यक्रम में शिथिलता आई, सारा जोर कौंसिल प्रवेश के ऊपर लगने लगा। सब लोग वोट के मैदान में आ गए। उस समय जो चुनाव का तरीका था और जो निर्वाचन पद्धति थी, उसे देशभक्ति की भावना को एक तरफ रख दिया और साम्प्रदायिकता की लहर को सामने लाकर खड़ा कर दिया। तो जहाँ गांधी जी यह समझते कि दास बाबू और मोतीलाल जी के कौंसिलों में जाने के प्रयोग को मौका मिलना चाहिए, वहाँ मैं समझता हूँ कि उनके सामने शायद यह बात नहीं थी कि कौंसिलों के प्रोग्राम को हाथ में लेने का अर्थ यह होगा कि अपील फिर साम्प्रदायिकता के आधार पर वोटर से की जाएगी। सीमित 'वोटर्स' थे। जो ज्यादा टैक्स देते थे वही वोटर होते थे। स्थायी स्वार्थ के लोग ही वोटर होते थे, उनकी थोड़ी संख्या थी, जनता तो वोटर थी नहीं, 'एडल्ट फ्रेंचाइज' नहीं था, तो ऐसे छोटे लोगों पर जिनके हमेशा स्थायी स्वार्थ होते हैं, जो सरकार का ही साथ देने में अपने को सुरक्षित समझते हैं उन पर आसानी से, खान

बहादुरों, रायबहादुरों और उस जमाने के जो अमन सभा के सरकारपरस्त लोग थे उनका ज्यादा असर होता है। इस वजह से जो नतीजे निकले थे वे भी चौंका देने वाले थे। 1923 का चुनाव हुआ उसमें सी.पी. और बरार में ही स्वराज्य पार्टी पूर्ण बहुसंख्यक पार्टी बन पाई, मुसलमानों की वहाँ बहुत कम संख्या थी, लेकिन जहाँ मुस्लिम अनुपात ज्यादा था वहाँ बहुमत नहीं मिल सका। बंगाल में स्वराज्य पार्टी सबल और सुसंगठित थी पर कौंसिल में बहुमत नहीं था इसका कारण बंगाल में दास बाबू ने अपने कौशल से, विशेष रूप से उन्होंने फरीदपुर की कान्फ्रेंस में मुसलमानों को जो आश्वासन दिया था और फरीदपुर पैक्ट के नाम से उनका जो पैक्ट शायद हुआ, उससे मुसलमानों में इतमीनान था। फजलुल हक और अकरम खाँ उस जमाने में दास बाबू के साथ थे। तो वहाँ ऐसी स्थिति हुई कि वहाँ बराबर-बराबर की स्थिति हुई और मिनिस्ट्री का 'फारमेशन' नहीं हो सका, उसको बार-बार रोका गया। यूनाइटेड प्रोविन्सिस में हालत यह थी कि वहाँ चूँकि तअल्लुकेदार और जमींदार हिन्दू-मुसलमान थे, दोनों की बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ थीं, तो उन्होंने अपना असर डालकर, 1923 में स्वराज्य पार्टी के नाम से जो चुनाव लड़ा गया था, उसमें स्वराज्य पार्टी को बहुत नहीं मिल सका। वही कमोवेश कैफियत 1926 में हुई, लेकिन 1923 के चुनाव में तो साम्प्रदायिकता ने इतना सिर नहीं उभारा था, 1926 के चुनाव में तो सांप्रदायिकता खुलकर खेल रही थी और चारों तरफ साम्प्रदायिकता के नारे लगाए जा रहे थे। ऐसा लगता था कि हिन्दू-मुसलमानों का आपस का द्वेष एक कहर बरपा करने वाला है।

सन् 1924 में जुलाई-अगस्त के महीने में दिल्ली में एक बहुत बड़ा दंगा हुआ जिसमें लगभग दो ढाई सौ हिन्दू और दो-ढाई सौ मुसलमान मारे गए। दिल्ली की परम्परा बिल्कुल दूसरी तरह की थी। यहाँ हिन्दु-मुस्लिम दंगे नहीं होते थे। बल्कि हकीम अजमल खाँ के पिता

हकीम गुलाम महमूद खाँ जब तक जिन्दा थे, दिल्ली में कई बार लोगों ने हिन्दू-मुस्लिम दंगा कराने की कोशिश की, लेकिन उनको कभी सफलता प्राप्त नहीं हुई। हकीम महमूद बहुत ही अच्छे हकीमों में से थे। दिल्ली के बड़े परिवारों में और छोटे परिवारों में भी कोई परिवार ऐसा नहीं था। जिसने उनके इलाज से लाभ न उठाया हो। वह बहुत सच्चे, ईमानदार, प्रेमी, स्नेही, व्यक्ति थे। दिन-रात किसी भी वक्त लोग उन्हें बुला सकते थे। दिल्ली के प्रति उनकी सेवाएँ बड़ी जबरदस्त थीं। जब तक हकीम महमूद जिंदा रहे, कितनी कोशिशें हिन्दू-मुस्लिम दंगा कराने की हुईं लेकिन वे सब विफल हो गईं, उनके प्रभावशाली नेतृत्व ने हर ऐसे मौके पर एकता को बाँधे रखा, कभी वह एकता टूटने नहीं पाई।

लेकिन इधर 1924 के शुरू से ही मुल्क में दो तरह के आन्दोलन प्रारम्भ हुए। पहले तो शुरू हुआ शुद्ध आन्दोलन। इसमें मलकानों को जो पठान थे उनको शुद्ध करके फिर से राजपूत बनाने की बात थी। उसके साथ-साथ यह भी था कि हिन्दुओं का संगठन करना चाहिए, क्योंकि हिन्दू जाति बिखर रही है। तो शुद्धि और संगठन के रूप में ये दोनों आन्दोलन प्रारम्भ हुए। इसके जवाब में मुसलमानों की ओर तबलीग और तंजीम का आन्दोलन शुरू हुआ। बड़े-बड़े स्वतंत्रता के योद्धा दोनों तरफ बँट गए। स्वामी श्रद्धानंद ने शुद्धि और संगठन का भार लिया और दूसरी ओर डॉ. किचलू जैसे लोगों ने तबलीग और तंजीम का जिम्मा ले लिया। सारे देश में एक हलचल मची। कितनी शुद्धि हुई, कितनी तबलीग हुई ये आँकड़े अगर इकट्ठे किए जाएँ तो लगेगा कि बहुत ही नगण्य हैं। कैफियत यह थी कि छोटे-छोटे लड़के, 10-11 12 साल की आयु के, कभी जामा मस्जिद के पास रोते हुए दिखाई दें कि साहब हमें आर्य लोग पकड़कर ले गए। देखिए, जबरदस्ती चोटी रख दी और बहुत परेशान किया, हमको हिन्दू बना लिया, जनेऊ पहना दिया। इन सबसे मुसलमानों में गुस्सा बढ़ा।

उसको फिर से इस्लाम में जाबिता से मुस्लिम बनाया गया और उसकी खातिर-वातिर की। दस दिन बाद वह लड़का वहां से गायब हो गया और फिर वह पहुँच गया आर्य-समाजियों से कहा कि देखिए, मुसलमानों ने जामा मस्जिद में पकड़ लिया और मुझको जबरदस्ती मुसलमान बना दिया, देखिए मेरा खतना भी कर दिया, बताइए मैं क्या करूँ? बहुत रोए धोए, आर्यों ने उसकी बहुत खातिरदारी की और उसकी फिर से शुद्धि की गई। शुद्धि और संगठन, तबलीग और तंजीम से कोई विशेष अंतर तो नहीं पड़ा, लेकिन लोगों के दिल में कड़वाहट आ गई। इन्हीं सारे वातावरणों में फिर इस तरह के गीत भी बनने लगे कि “मेरे मौला बुला ले मदीन मुझे, ये आर्य न जीने देंगे मुझे” उधर से “शिव शंभो बुला ले कैलाश मुझे...” वगैरह, वगैरह। बाद में पता चला कि ये सब गीत एक ही आदमी के बनाए हुए थे और वही उर्दू में छपा कर हिन्दू और मुसलमान दोनों में तकसीम करता था। हिन्दू भी उसी से खरीदते थे और मुसलमान भी उसी से खरीदते थे, एक ही आदमी यह सारी चीजें कर रहा था। यानी इस तरह से कुछ लोग सारे आन्दोलन को ‘कमर्शलाइज’ भी करने की कोशिश कर रहे थे, उससे लाभ उठाने की बात कर रहे थे। तरह-तरह की भड़कीली खबरें चारों तरफ फैलाई जाती थीं, परिणामस्वरूप दिल्ली में दंगा हुआ और जो खबरें अखबारों में छपी इन खबरों ने पूरे देश के वातावरण को दूषित बना दिया। गांधी जी ने पंडित सुन्दरलाल जी को तार भेजा कि वह फौरन दिल्ली जाएँ और दिल्ली में जो वाकियात हुए हैं, उनकी जाँच करके रिपोर्ट दें। चुनांचे भगवानदीनजी को साथ लेकर वह दिल्ली आए। दिल्ली में उन्होंने जाँच-पड़ताल की। उसके बाद जो सही कैफियत थी वह उनको लिखकर भेजी।

पंडित सुंदरलालजी ने दिल्ली में हकीम अजमलखाँ, डॉ. अंसारी और मौलाना मुहम्मद अली तब यहीं रहते थे और कांग्रेस के सदस्य थे, आदि से मशविरा

करने के बाद गांधीजी को लिखा कि ये सब लोग चाहते हैं कि यहाँ एक एकता सम्मेलन किया जाए। फिर मौलाना मुहम्मद अली की तरफ से लोगों को दावतनामे गए। मुल्क के जो हिन्दू-मुसलमान नेता थे उनको, जो कांग्रेस के खास नेता थे उनको और एक तार मुझको भी जबलपुर में मिला कि मैं भी एकता सम्मेलन में शामिल हूँ। क्योंकि मैंने वहाँ हिन्दू मुस्लिम एकता के सिलसिले में, दंगे के दिनों में काम किया था और कर रहा था। सितम्बर का महीना था, दिल्ली के किसी हॉल में एकता सम्मेलन हुआ, उस जगह दिल्ली में अब वह हॉल नहीं है। बाद में शायद वहाँ सिनेमागृह बन गया था, लेकिन अब वहाँ वह सिनेमागृह भी नहीं है, दूसरी इमारतें खड़ी हो गई हैं, मैं उस हॉल का नाम भूल रहा हूँ। तो पंडित मोतीलाल नेहरू सर्वसम्मति से उसके अध्यक्ष चने गए, क्योंकि उन पर हिन्दू-मुसलमान दोनों का विश्वास था। कई दिन तक बहस चलती रहीं। वहाँ मैंने देखा कि छोटे-छोटे मामलों में भी जिस तरह से लोग अड़ते थे, जैसे आरती का कौन सा वक्त हो और कौन सा वक्त न हो। वहाँ पर भिवानी के पंडित नेकीराम शर्मा थे।

पंडित मोतीलाल नेहरू ने उनका नाम ही आरती प्रसाद रख दिया था, क्योंकि आरती के वक्त पर वह बहुत ज्यादा जोर देते थे। वह कहते थे कि नमाज का वक्त टल सकता है मगर आरती का वक्त नहीं टल सकता और इस पर उन्होंने इतना जोर दिया कि पंडित मोतीलाल जी और बाकी लोगों को जब भी वह कहीं दिखाई दें तो कहते थे कि कहिए आरती प्रसाद जी, क्या हाल है आपका। फिर ताजिया निकले या न निकले, पीपल की डाल कितनी ऊँची है, उसके नीचे से ताजिया निकले या न निकले, पीपल की डाल कटे या ताजिया छोटा किया जाए, या जमीन खोदकर ताजिया निकालने की बात की जाए, इन छोटी-छोटी बातों पर देश के दिग्गज दिमाग के लागे वहाँ बहस करते थे और कोशिश करते थे कि दोनों दृष्टिकोणों में मेल-मिलाप हो। मस्जिद के सामने बाजा

बजे तो किस वक्त बजे नमाज का वक्त क्या हो और अगर देवी-देवताओं का या दशहरे पर या दीवाली पर या अन्य किसी मौके पर जुलूस निकले तो किस वक्त निकले और उसका क्या तरीका हो। जहाँ मस्जिद के आगे बाजा बंद करने का रिवाज या परम्परा नहीं है वहाँ भी क्या यह रिवाज चलाया जाए या न चलाया जाए, जलस के कौन से मार्ग हों, कौन से न हों, इन पर बेहद बहस हुई। और चीजों पर तो इख्त्लाफ था लेकिन इस बात पर सब एक राय थी कि गांधी जी ने जो उपवास किया है वह एक बहुत बड़ा कदम है और यह लोगों के हृदय को शुद्ध करने वाला कदम है। इससे हम आशा करेंगे कि देश के भीतर एकता का वातावरण फिर से फैलेगा और ऐसी चीजें लोग नहीं करेंगे जिससे हिन्दू-मुस्लिम फसाद हों, दंगे हों। हर शहर और जिले में ऐसी समिति बनाएँगे जो एकता समिति होगी। और जिसमें हिन्दू-मुसलमान होंगे और कोई मामला होने से पहले उस समिति में वह पेश होगा और उसके फैसले लोगों को मानने होंगे। तो इस तरह से वह एकता सम्मेलन गांधी जी के 21 दिन के उपवास के साथ समाप्त हुआ।

लेकिन हिन्दू-मुसलमान दंगों की कहानी वहीं समाप्त नहीं होती। जैसा मैंने कहा कि हिन्दू-मुस्लिम फसादों की जड़ में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली थी और 1926 का जब चुनाव आया तो एक बार फिर से देश में जगह-जगह दंगे-फसादों की बाढ़ आ गई। पंडित मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद में एक एकता समिति बनाई, उसकी बैठकें भी कई बार की। वह इलाहाबाद की ही समिति नहीं थी बल्कि अध्यक्ष के नाते उन्होंने उसमें कई प्रदेशों के प्रतिनिधि शामिल किए थे। मुझको भी उसमें एक-दो बार शामिल होने का मौका मिला। देश में जहाँ-जहाँ दंगे होते थे उन्हें 'रिव्यू' किया जाता था और कम-ज्यादा किसका कुसूर है, इसकी भी खुलकर आलोचना होती थी, लेकिन उससे कोई परिणाम नहीं निकला। सन् 1926 का जब चुनाव आया तो देशभर में

एक ऐसा वातावरण छा गया कि लोग अपनी सब निष्ठा भूल गए। देश में हिन्दू सभा के प्लेटफॉर्म से जो तीन नेता उभरे हिन्दू त्रिमूर्ति के नाम से, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद और पंडित मदन मोहन मालवीय, उन्होंने जगह-जगह दौरे किए। दूसरी ओर कांग्रेस के मंच से मैंने देखा पंडित मोतीलाल नेहरू ने अकेले इनका मुकाबला किया। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था, बीच में वह बहुत बीमार हो गए थे जिसकी वजह से मसूरी गए। मसूरी से उन्होंने एक तार पंडित सुन्दरलाल जी को भेजा कि “आई एम अपीलिंग यू फ्रॉम माई सिक बेड देट काइंडली हैल्प अस इन फाइटिंग द कम्युनल एलीमेंट्स, इ आर चैलेंजिंग दी कांग्रेस एट दी टाइम ऑफ दी जनरल इलेक्शनस।” पंडित सुन्दरलाल जी को उस वक्त तक कौंसिल बहिष्कार के कार्यक्रम में पूर्ण विश्वास था, मेरी उनसे इस विषय पर काफी बहस हुई। मैंने उनको कहा कि यह प्रश्न कौंसिल बहिष्कार का नहीं है, अभी आपने जो फैसला किया है और आप कांग्रेस की कार्यवाहियों से जो अलग हुए हैं वह यह कर अलग हुए हैं कि अब आपको साम्प्रदायिक सद्भावना का प्रचार करना है। तो साम्प्रदायिक सद्भावना को आज जो सबसे बड़ी चुनौती मिल रही है वह हिन्दू महासभा के प्लेटफॉर्म से मिल रही है। हिन्दुओं का जहाँ तक सम्बन्ध है और मुसलमानों में फिर से एक कटुता आ रही है। उन्होंने अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग पार्टियां बना ली हैं और उनकी तरफ से वे चुनाव लड़ रहे हैं बल्कि आप साम्प्रदायिकता की चुनौती को स्वीकार करके खिलाफ लोहा ले रहे हैं। मैंने देखा मेरी बातों का उन पर कोई असर नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा कि यहाँ मेरा आपका बहुत तीव्र मतभेद है और मैं इस मामले में पंडित मोतीलाल नेहरू के साथ हूँ। चुनावों के इस मामले में मैंने कानपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और वहाँ मैंने काफी काम किया। बीसों मीटिंगें मुसलमान और हिन्दू मोहल्लों में कीं, और साम्प्रदायिकता को जिस रूप में मैंने देखा

और समझा था और एकता के संदेश को जिस रूप में मैंने धर्मों के बुनियादी सिद्धान्तों में पाया उन्हीं सिद्धान्तों को अमल में लाने का प्रयास किया।

इलाहाबाद में जब पंडित मदन मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानंद और लाला लाजपतराय आए और पुरुषोत्तमदास टण्डन पार्क में उनकी चुनाव सभा हुई तो उसमें लालाजी ने एक मुद्दा रखा। मैंने लाला जी से बहुत से प्रश्न किए। लाला जी मुझको पहचानते थे, नागपुर कांग्रेस में मैं उनकी सेवा कर चुका था। पंडित सुन्दरलाल जी के साथ मैं रहता हूँ। यह भी उनको मालूम था, तो उनको मेरे प्रश्नों से थोड़ा अचरज सा हुआ, लेकिन मालवीय जी ने झट मुझको अपने पास मंच पर बुलाया और कहा कि आओ बैठो। मेरी पीठ ठोकी और कहने लगे कि तुमने अच्छे सवाल किए, मगर इनके जवाब काफी विषद हैं और लम्बे हैं।

ऐसा करो कि तुम घर पर जाओ, लाला जी तो मेरे साथ ही ठहरे हैं, तो घर पर आकर तुम इनसे देर तक बात करो। जो उनके पक्ष के लोग ये उनको मेरे प्रश्नों पर बहुत गुस्सा आया लेकिन वहाँ बहुत से लोग थे जिन्हें मेरे प्रश्न पसंद भी आए और वे चाहते थे कि उनका जवाब मिले। मगर लाला जी ने अपनी बात कही, मीटिंग समाप्त हुई। खैर, मैं दूसरे दिन उनके यहाँ गया और काफी देर तक बातचीत की। मैंने लाला जी से कहा कि मैंने तो आपके वे व्याख्यान सुने हैं जिनमें आपने यह कहा था कि फूट जाएँ ये आँखें अगर इनमें कोई हिन्दू-मुसलमान की तमीज हो, और आज आपने अपनी तकरीर में यह डाट कही कि हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात दीवार से सर टकराना है, तो यह परिस्थितियों के कारण परिवर्तन हुआ या आपके उसूलों और सिद्धान्तों में परिवर्तन आया? लाला जी ने कहा कि मेरे उसूलों में परिवर्तन तो परिस्थितियों की वजह से आया। मैंने कहा एक बात बताइए लाला जी, क्या आपको सारा गुस्सा इस वजह से नहीं है कि कांग्रेस पार्टी ने आपके खिलाफ उम्मीदवार

खड़ा किया? तो कहने लगे कि यह तो कांग्रेस पार्टी को सोचना चाहिए कि मेरे खिलाफ उन्होंने क्यों उम्मीदवार खड़ा किया? अगर वह चाहते तो कोई उम्मीदवार खड़ा न होता। मैंने तो यह चाहा था कि आपस में कम-से-कम जो नेता लोग हैं, उनके खिलाफ कोई आदमी न खड़ा हो, लेकिन मेरे खिलाफ उम्मीदवार खड़ा करके उन्होंने उसकी पहल की। तो मैंने कहा कि अगर आपको मोतीलाल जी की तरफ से व्यक्तिगत रोष है तो वह रोष देश से संबंधित जो बुनियादी प्रश्न है, उनके विषय में जो आपके विचार हैं, उसे धक्का नहीं लगाना चाहिए। अगर बुनियादी विचारों पर धक्का लगता है, अगर 'पर्सनल ऐंगल' से आदमी हर चीज को देखने लगे तो फिर तो उसका कुछ परिणाम नहीं निकलेगा। खैर, लाला जी को मैंने प्रणाम किया, उस वक्त वह बहुत व्यस्त थे, कहीं बाहर जाने वाले थे, ज्यादा बातचीत नहीं हो सकी। लेकिन उन्होंने कुशलक्षेम पूछी। सुन्दरलाल जी का हाल पूछा, और बात वहीं समाप्त हो गई।

कानपुर में भी जब चुनाव हो रहा था। गणेशशंकर विद्यार्थी जी उ.प्र. के जाने-माने निस्पृह देशभक्त थे और उनके त्याग और कुर्बानियों से सब लोग परिचित थे कि किस तरह से उन्होंने वहाँ के किसानों के लिए और गरीब जनता के लिए प्रताप द्वारा कुर्बानियाँ की, जेल यात्राएँ कीं। उन पर मुकदमें चले और उनको बरबाद करने की कोशिश हुई। उनका सीधा-साधा सच्चा निस्पृह त्यागवृत्ति जीवन था। इन सबसे कानपुर की जनता उनके प्रति आकर्षित थी। मैंने लाला जी से यह भी कहा कि आखिर आपको गुस्सा मोतीलाल जी के ऊपर था। मोतीलाल जी के खिलाफ आप उम्मीदवार खड़ा करते। गणेश शंकर जी तो आपके भक्त थे, कितना आदर आपका करते थे। उनके बराबर निस्पृह और त्यागी आदमी कौन मिलेगा और त्यागी आदमी अगर आपको मिलता तो बेशक आप उनके खिलाफ खड़ा करते, लेकिन आपने तो एक व्यापारी, चुन्नीलाल गर्ग, को उनके

खिलाफ खड़ा किया जिसका न कोई समाज सेवा का रिकॉर्ड है, न देश सेवा का। वह तो अब तक सरकार की खुशामद में लगा हुआ था। खैर, यह त्रिमूर्ति कानपुर भी पहुँची और इनकी मीटिंग भी हुई जहाँ लाला जी ने कुछ दबे स्वरों में लेकिन मालवीय जी ने और स्वामी श्रद्धानंद जी ने बहुत जोरदार शब्दों में चुन्नीलाल जी के लिए वोट की अपील की। हम लोगों के सामने जो कार्यकर्ता थे एक परेशानी थी। बालकृष्ण शर्मा, जी.जी. जोग, रघुबरदयाल भट्ट, गुरु रघुबरदयाल, शिवनारायण मिश्र जो उस समय कानपुर के कांग्रेस कार्यकर्ता थे और हम सब लोग जो बाहर से वहाँ गए थे, जिनकी आस्था थी कि गणेश जी जीतें और अधिक से अधिक मतों से जीतें, को लगा कि लाला जी, स्वामी श्रद्धानंद जी और पंडित मदन मोहन मालवीय ने मीटिंग में जो भाषण दिए हैं उसका कोई जवाब होना चाहिए। नहीं तो लोगों के दिलों में कुछ शंकाएँ रह जाएँगी। पंडित मोतीलाल जी से कहा गया कि वह भी आकर मीटिंग करें। पंडित मोतीलाल जी आए। दूसरे दिन मतदान होने वाला था, अब तो चुनाव पद्धति में सुधार हो गया है कि 48 घंटे पहले से मीटिंग बंद हो जाती है, उस समय तो आखिरी शाम तक मीटिंग हो सकती थी, तो चुनाव के आखिरी शाम को मीटिंग रखी गई। उस जमाने में कानपुर में बड़ी कोशिशों से हम लोगों ने कोई 50,000 आदमी इकट्ठे किए और समझा यह जाता था कि यह बड़ी विशाल सभा है। अब तो कानपुर में लाख दो लाख आदमियों को इकट्ठा होना कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन उस जमाने में 50,000 आदमियों को इकट्ठा हो जाना एक बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। लाउड स्पीकर भी उस जमाने में नहीं थे, तो जोरदार आवाज से ही सारा काम करना होता था। पंडित मोतीलाल जी वहाँ बहुत अच्छा बोले, जैसे ही वह बोलकर बैठे तो हिन्दू महासभा के कानपुर के मंत्री राजाराम साबिर उठकर खड़े हुए। उन्होंने कहा कि पंडित जी, मुझे आपसे एक प्रश्न करना है। लोगों के कान उनके

प्रश्न की तरफ चले गए। पंडितजी ने कहा बोलो, क्या प्रश्न करना है। प्रश्न ऐसा कि सब हतप्रभ रह गये। सारे कान और आँखे प्रश्नकर्ता की तरफ चली गईं। पंडित मोतीलाल जी को मुश्किल से पाँच सेकण्ड लगे होंगे, उन्होंने कहा, तुमने बहुत ठीक सवाल किया, लेकिन तुम्हारी आवाज कमजोर है। जरा पीछे घूमकर इस सवाल को दोहरा दो। उन्होंने दाहिने तरफ घूमकर दोहरा दिया, कहने लगे अब बाएँ तरफ घूमकर सवाल को फिर दोहरा दो, बाएँ तरफ दोहरा दिया, फिर उन्होंने कहा कि अच्छा, घूमकर एक बार फिर अब इस सवाल को दोहराओ, जितनी तुम्हारे गले में ताकत हो। उन्होंने फिर दोहराया। राजाराम साबिर जी समझे कि उनका सवाल मुमकिन है किसी ने सुना या सुना हो, मगर पंडित मोतीलाल जी के इस 'एक्ट' से अब उनका यह सवाल जितने लोग वहाँ थे सबको सुनाई दिया। मगर पंडित मोतीलाल जी वकील आदमी थे। वह प्रश्न जो एक ही दफा किया गया था और उसका जो गंभीर असर हो गया था, तो उस प्रश्न को जब दस बार दोहराया गया तो उसका जो मार्मिक असर था, वह सब बिखर गया। उसके बाद उन्होंने कहा अच्छा, अब मेरा जवाब सुनो। कहने लगे चारपायों में मैंने चारपाई नहीं खाई, परिंदों में मैंने पतंगे नहीं खाए और पानी के जानवरों में मैंने नाव नहीं खाई, यह कहकर वह बैठ गए। हम लोगों ने बड़े जोर से पंडित मोतीलाल नेहरू जिन्दाबाद, 'भारत माता की जय', 'गाँधी जी की जय' के नारे लगाकर वह मीटिंग समाप्त की। पंडित मोतीलाल जी में बड़ा साहस था और बहुत साहस और खूबी से वह इस तरह के प्रश्नों को हल करते थे और जवाब देते थे। मगर यह भी एक अजीब बात है कि मालवीय जी तो चारों तरफ घम-घूम कर कहते थे, मोतीलाल जी का मकाबला कर रहे थे। लेकिन उनके सगे-भतीजे पंडित कृष्णकांत मालवीय कांग्रेस के उम्मीदवार थे। और पंडित मोतीलाल जी के सगे भतीजे पंडित श्यामलाल नेहरू हिन्दू महासभा के सुल्तानपुर से उम्मीदवार थे।

उसी जमाने में पंडित श्यामलाल नेहरू की माँ की मृत्यु हुई थी। वह पंडित मोतीलाल नेहरू की भाभी थीं और पंडित नंदलाल नेहरू की पत्नी थीं। तो पंडित श्यामलाल नेहरू का वहाँ स्लोगन यह था कि "माँई मेरी मर गई, माँई मेरी माँई है"। वह एक ऐसा तुमुल युद्ध था जिसमें 'क्रास करेंट्स' के जरिए यह पता नहीं चलता था कि रिश्तेदारियों की सीमा कहाँ खींची जाए और उसूलों की सीमा कहाँ खींची जाए।

कानपुर के उस चुनाव में गणेश जी की बहुत अधिक मतों से विजय हुई। वह चुनाव ऐसा था जिसमें साम्प्रदायिकता के विरोध में कांग्रेस पार्टी ने बहुत जबरदस्त प्रचार किया और उसी तरह घनघोर साम्प्रदायिकता का प्रचार हिन्दू महासभा की ओर से किया गया। मगर कानपुर की जनता इतनी सजग थी कि उसने गणेश जी की कुर्बानियों का, उनके त्याग और सिद्धांतों का आदर किया और बहुत मतों से चुन्नीलाल पराजित हुए।

हिन्दू महासभा की ओर से जो परचा निकाला गया, उसमें मोतीलाल जी को मुस्लिम परस्त, इस्लाम परस्त, हिन्दुओं का दुश्मन, शत्रु इत्यादि बातें उठाई गई थीं। मैंने वह परचा ले जाकर मोतीलाल जी को दिया था और उनसे चाहा था कि वह उसका कोई जवाब निकालें। मैंने चूँकि मालवीय जी से कुछ प्रश्न किए थे इसलिए मोतीलाल जी ने उस मीटिंग का हाल दरियाफ्त करने के लिए कि तुमने क्या प्रश्न किए, और उनके क्या जवाब मिले, मुझको बुलवा भेजा था। मैंने उसी परचे को लेकर उनसे बहुत से प्रश्न किए थे। मोतीलाल जी ने कहा कि नहीं, इसके जवाब की कोई आवश्यकता नहीं है। तो जब मैं कानपुर की विजय का समाचार लेकर मोतीलाल जी के पास पहुँचा, तो कहने लगे कि मैं इसी उत्तर की प्रतीक्षा में था। उस परचे का यही जवाब है, उस परचे का कोई दूसरा जवाब नहीं हो सकता था।

उसके बाद दिसम्बर का महीना आया और

जिस तरह से बहुत सा साहित्य प्रकाशित हो रहा था। उससे मुसलमानों में एक बड़ी जबरदस्त बेचैनी और खलबली हो रही थी। उन्होंने कहा कि हमारे रसूल पर, हमारे पैगम्बर पर और हमारे मजहब पर जिस तरह के आक्रमण हो रहे हैं, उन पर स्वामी श्रद्धानंद जी की छत्रछाया है। आर्यसमाज के प्लेटफार्म से इन सब इल्जामों को दोहराया जाता है, हिन्दू महासभा के प्लेटफार्म से हमारे रसूल की जिन शब्दों में भर्त्सना की जाती है। संसार का सबसे बड़ा व्याभिचारी, संसार का सबसे बड़ा कुटिल, सबसे बड़े लोभी व्यक्ति के रूप में उनको पेश किया जाता है। इस पर कोई रोक-टोक नहीं। हृदय को देखिए कि हमने दिल्ली में जामा मस्जिद के मिंगर से स्वामी श्रद्धानंद को आमंत्रित किया था। उनसे कहा था कि आप मिंगर पर खड़े होकर उपदेश दीजिए और पच्चीस हजार मुसलमानों ने उनके संदेश और उपदेश को सुना था। उनकी जय-जयकार की थी। उनकी आवाज पर हमने दिल्ली में पुलिस की गोलियों का सामना किया और जो लोग घंटाघर पर शहीद हुए। उसमें मुसलमानों की संख्या आधे से ज्यादा थी। लेकिन वह सारी बातें भूल गए। हमने उनसे व्यक्तिगत रूप से भी कहा कि कम-से-कम आपको तो हमने पूरा विश्वास दिया था कि आप कहीं हमारी गलती देखें, हमारी कोई बुराई देखें, तो हमको टोकें, हमको बुलाएँ, हमारे नेताओं से बात करें और हमको बताएँ कि यह बात हमने गलत की। लेकिन यह न करके आप ऐसे लोगों को आशीर्वाद दे रहे हैं, ऐसे प्लेटफार्म पर खड़े होकर भाषण देते हैं कि जिन प्लेटफार्मों से खले तौर पर हमारे धर्म और रसूल पर व्यक्तिगत, चारित्रिक आघात किए जाते हैं। लेकिन उसका कोई नतीजा निकल नहीं रहा था। धीरे-धीरे आग सुलग रही थी। उस आग को भड़काने में और चीजों ने भी मदद की। सन् 1924 में सफाई कर्मियों की शुद्धि का काम शुरू हुआ था उसमें बहुत से सफाई कर्मी शुद्ध होकर हिन्दू तो बन गए, लेकिन हिन्दुओं ने उनके साथ

खाना-पीना शुरू नहीं किया। उनके शादी-ब्याह जो मुस्लिम सफाई कर्मियों के साथ होते थे वे भी बंद हो गए और उनके सामने यह समस्या हो गई कि अब लड़कियों की शादी कहाँ करें। लड़कों के लिए बहुएँ कहाँ से लाएँ खाने पीने के मसले पर, हर हिन्दू उनसे कतराता था, उनके साथ बैठकर भोजन नहीं करता था। स्वामी श्रद्धानंद जी ने एक अनुसूचित जाति की लड़की को बेटी की तरह पाला और उसके बाद उन्होंने बहुत कोशिश की कि उसकी शादी किसी अच्छे हिन्दू से कर दें। लेकिन उसमें भी उनको कामयाबी नहीं मिली कोई शादी करने को तैयार नहीं हुआ। तो शुद्धि का जितना आडम्बर फैलाया गया था, वह अंदर से लगा कि यह तो बिल्कुल खोखला आडम्बर है। हिन्दू जो एक बार मुसलमान हो जाता है उसको शुद्ध करके वह समाज के किस अंग में जाए इसमें कठिनाई हुई। हिन्दुओं में 3028 जातियाँ हैं और हर जाति का अलग अलग, जैसे कबूतरों के अलग-अलग दरबे होते हैं, दरबा है। अगर बाहर से कोई आदमी आता है तो वह किस दरबे में जाए यह समस्या बन जाती है। कोई उसको स्वीकार नहीं करता। हर दरबा कहता है कि नहीं, तुम हमारे लिए अपरिचित हो। इस दरबे में तुम्हारी कोई गुंजाइश नहीं है। अगर कोई बाहर खड़ा है तो असहाय महसूस करता है। उसकी समझ में यह नहीं आता कि हिन्दुओं का जो सामाजिक संगठन है उसमें वह लोग जो बाहर से आए हैं उनकी क्या स्थिति होगी। किस तरह से होगी। तो शीघ्र ही यह बात जो सैकड़ों सफाई कर्मी हिन्दू हुए थे उनके सामने स्पष्ट हो गई कि उनकी हिन्दू समाज में कहीं जगह नहीं है। उनकी सफाई कर्मी की समाज में ही जगह हो सकती है। दूसरा जो सफाईकर्मी मुसलमान रह गए उनके अंदर यह प्रतिक्रिया हुई कि जैसे वे सारे हिन्दू रिवाज मानते थे, शीलता की पूजा करते थे, देवों की पूजा करते थे, गणेश का पूजन करने के बाद उनके यहाँ पाठ होता था और किसी शुभकार्य, शादी-विवाह के मौके पर सत्यनारायण

की कथा सुनते थे, वे सब बन्द हो गए। उनके नाम भी, मेरे एक कम्युनिस्ट मित्र थे सफाई कर्मी डॉ. कुंवर मोहम्मद अशरफ। उनकी पत्नी का नाम कुलसम था उनके साले का नाम प्रताप सिंह था। उनकी साली का नाम शांति था और उनके घरों में सारे हिन्दुओं के रिवाज चलते थे। लेकिन जब से यह शुद्धि का मामला खड़ा हुआ उसके बाद से ऐसी स्थिति आ गई कि जितने सफाईकर्मी मुसलमान रह गए थे, उन्होंने सारे हिन्दू रिवाजों को अपने यहाँ से काटकर अलग कर दिए और वे नाम भी जो हिन्दुओं के रखते थे वे भी बंद कर दिए। तो शुद्धि आन्दोलन जो था, वह एक तरह से आखिर में आकर बिखर गया और उस आंदोलन को कोई रास्ता नहीं मिल सका। स्थायी आधार नहीं मिल सका।

इसी तरह से मेरा अपना अनुभव है कि जैसे हिन्दू जाति-पाँति के शिकंजे में फँसे हुए हैं, उसी तरह के कमोबेश मुसलमान भी जाति-पाँति के शिकंजे में फँसे हुए हैं। हमारे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में इक्नॉमिक्स के प्रोफेसर ओबेदुरहमान साहब थे, उनके भाई किताबिस्तान नाम की प्रकाशन संस्था चलाते थे। एक दिन जब मैं उनके यहाँ गया तो मैंने प्रो. ओबेदुरहमान को देखा कि वह एक लम्बी फहरिस्त लिए बैठे थे। मैंने पूछा यह क्या फहरिस्त है, कहने लगे यह उन खानदानों की फहरिस्त है जो भटनागर कायस्थ थे, और मुसलमान हो गए हैं। चूँकि हम भटनागर कायस्थ से मुसलमान हुए हैं इसलिए हमारे यहाँ शादी-ब्याह सब भटनागर कायस्थ मुसलमानों में ही होते हैं। तो हमको फहरिस्त रखनी पड़ती है और जब लड़के-लड़कियों की शादी करनी होती है तो हमारे यहाँ शादी-ब्याह भटनागर मुसलमान में ही हो सकते हैं। तो मैंने देखा कि मुसलमानों में भी जाति-पाँति बुरी तरह से घुसी हुई है। मुझे याद है कि यही जाति-पाँति और छूआछूत का सिलसिला मैंने इलाहाबाद में देखा। इलाहाबाद में इरविन क्रिश्चन कॉलेज में प्रो. भट्टी थे। जब मैं म्युनिसिपल्टी का चेयरमैन था तो

म्युनिसिपल्टी के सदस्य थे। अच्छे सदस्य थे, ईसाई थे। सज्जन पुरुष थे, बहुत शांत, धीर प्रवृत्ति के। एक दिन मैं कॉलेज में उनसे मिलने किसी काम से चला गया, कोई परामर्श करना था, तो मैं कॉलेज में उनके पास बैठा हुआ था इतने में दूसरे प्रोफेसर एडवर्ड्स भी वहाँ आ गए। बाद में वह इस्तीफा देकर यू.पी. लेलिस्लेटिव कौंसिल के लाइब्रेरियन हो गए। थोड़ी देर के बाद उन्होंने कहाँ कि जरा पानी पिलवाओ। प्रो. भट्टी ने चपरासी से कहाँ कि भाई, इनको पानी पिलाओ। चपरासी गिलास ले आया, उनको दिया, उन्होंने पानी पीकर चपरासी को गिलास देना चाहा तो चपरासी ने बड़े सीधे-सीधे भाव से कहा कि साहब, भुईयाँ धर देओ, यानी गिलास जमीन पर रख दो। प्रो. भट्टी ने कहा, क्यों भाई, अब तुमको जूठा गिलास लेने में क्या एतराज है, अब तो तुम ईसाई हो गए हो। तो उसने बिना किसी हिचक के जवाब दिया साहेब, ईसाई भर हैं तो का आपन धर्म दीन है। यानी मैं ईसाई हो गया हूँ तो क्या मैंने अपना धर्म दे दिया। यानी उस बेचारे के लिए तो उसका सारा धर्म उसके छूतछात और खानपान से संबंधित था। यानी इतनी गहराई के साथ जातिप्रथा और जाति ही के कोष्ठकों ने हममें से हर व्यक्ति को जकड़ रखा है। उससे बाहर निकलना उसके लिए असंभव हो गया।

इस सिलसिले में मैं आपको एक बात बताता हूँ। केरल में ईसाई धर्म का ज्यादा प्रचार हुआ और वहाँ अनुसूचित जाति के लोग भी ईसाई हुए, नम्बूदिरीपाद ब्राह्मण भी ईसाई हुए। तो नम्बूदिरी ब्राह्मण जो ईसाई हुए थे उन्होंने पोप के पास एक प्रार्थना पत्र भेजा कि उनके लिए अलग गिरजे होने चाहिए। केरल की परिस्थिति और भारत की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए पोप ने जो धर्माज्ञा प्रकाशित की उसमें उन्होंने उनकी उस प्रार्थना को स्वीकार किया और यह मान्यता दी कि केरल के जो ब्राह्मण ईसाई हुए हैं, उनके लिए वहाँ अलग गिरजे होने चाहिए और प्रार्थना करने में उनको पूरी स्वतंत्रता होनी

चाहिए, वहाँ दूसरों को जाने की आवश्यकता नहीं है। तो इस कदर जाति-पाँति ने हमारे समाज को जकड़ रखा है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, सिख हो या आर्यसमाजी हो, जिनका बुनियादी सिद्धांत ही हम जाति-पाँति को नहीं मानते। वे सब इसमें जकड़े हुए हैं। तो इन परिस्थितियों में शुद्धि आंदोलन और उसी तरह से तबलीग आंदोलन 1926 तक आकर बिखर गए। इनमें जो एक बल था वह समाप्त हो गया। मुझे लगता है कि शुद्धि और तबलीग-तंजीम के पीछे एक ही भावना थी और जिस तरह से कठपुतलियों को नचाने के लिए कोई तार खींचता है, उसी तरह से 1926 के चुनाव में इन दोनों गों का परा प्रयोग किया गया और यह भी सोचा गया होगा कि आगे के चुनाव में जैसी परिस्थिति होगी उसके अनुसार साम्प्रदायिकता के आधार पर नए 'स्लोगन', नए आंदोलन, शुरू किए जा सकते हैं। फिर इन आंदोलनों की आवश्यकता शायद नहीं रह गई थी, इसीलिए वे दोनों आंदोलन, शुद्धि संगठन, तबलीग और तंजीम, 1926 के आखिर में आकर बिखरने लगे। लेकिन उन्होंने जो ज्वाला और हिंसात्मक वृत्ति पैदा की और ऐसा साहित्य पैदा कर दिया, विशेष रूप से इस्लाम का विषवृक्ष और रंगीला रसूल जिनकी वजह से लोगों के दिमाग में खराबी आई और उसका अंत स्वामी श्रद्धानंद के कत्ल से हुआ।

स्वामी श्रद्धानंद के बलिदान ने गोवहाटी कांग्रेस का वातावरण ही बड़ा क्षुब्ध कर दिया। स्वामी श्रद्धानंद की बड़ी सेवाएं थीं, सामाजिक स्तर पर ओर राजनीतिक स्तर पर। अमृतसर की जो 1919 की कांग्रेस हुई थी उसके वह स्वागताध्यक्ष थे और दिल्ली में उन्होंने 1919 के जुलूस का नेतृत्व किया था जिसमें गोलियाँ चली थीं। जामा मस्जिद के मिंगर से उन्होंने खड़े होकर पचास हजार मुसलमानों को संबोधित किया था। कांग्रेस में उनका व्यक्तित्व अलग चमकता हुआ था। तो ऐसे व्यक्ति की हत्या हुई। उनकी पूरी सेवाओं को ध्यान में

रखते हुए लोग क्षुब्ध थे। सारा वातावरण ऐसा हो गया था, वहाँ यह स्थिति हो गई थी कि थोड़े से आदमी ही अपना दिमाग सही रख पा रहे थे। बाकी तो हर कांग्रेस वाला जब किसी मुसलमान को देखता था तो उसके दिल में एक संदेह, एक अलहदगी की भावना प्रकट होती थी। यह स्थिति थी कि अच्छे-अच्छे, बड़े-बड़े कांग्रेस नेताओं के बीच में अगर मौलाना महम्मद अली और मौलाना शौकत अली पहुँच जाते थे तो बातचीत बंद हो जाती थी। बात नहीं करते थे। ऐसे वातावरण में, ऐसी स्थिति में जिनका अंत इस प्रकार से हुआ, कांग्रेस में भी एक संकोच आ गया। उसके अंदर भी ऐसी वृत्तियाँ पैदा होने लगीं कि लोगों के मन के भीतर साम्प्रदायिकता को एक आधार मिल गया। गोवहाटी कांग्रेस बड़े शोकमय वातावरण के भीतर समाप्त हुई और लोग अपनी-अपनी जगह लौटे।

सन् 1927 में तो गांधी जी कांग्रेस से अलग थे। सितम्बर 1925 में पटना में जो ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, उसमें भी शामिल हुआ था वहाँ गांधी जी की तरफ से एक प्रस्ताव आया कि कांग्रेस को विधिवत रचनात्मक काम को हाथ में लेना चाहिए और उनके प्रस्ताव के द्वारा ही ऑल इंडिया स्पिनर्स असोसिएशन, विलेज इंडस्ट्रीज असोसिएशन और इस तरह की कुछ तीन-चार संस्थाओं की शुरुआत वहीं से हुई। गाँधी जी ने यह भी कहा कि उन प्रस्तावों पर अमल करने के लिए वह कांग्रेस से, राजनीति से, अलग हटकर अपना पूरा वर्ष उसी पर, यानी रचनात्मक कामों में ही व्यतीत करना चाहते हैं और उसी का वह प्रयोग करना चाहते हैं।

सन् 1924 के अंत में बेलगाँव में जो कांग्रेस हुई थी गांधी जी ने उसकी अध्यक्षता की थी। वहाँ मैंने देखा कि कुछ नौजवानों ने खड़े होकर जिस तरह से गांधी जी की नुक्ताचीनी शुरू की, जिस तरह से उन्होंने बिना किसी बात का ध्यान रखे हुए उन पर व्यक्तिगत आक्षेप शुरू

किए, ज्यादातर लोगों के दिलों पर बड़ा धक्का लगा। मन में ऐसा लगा कि ये बड़े बदतमीज किस्म के लोग हैं जो कांग्रेस के संगठन के भीतर डेलीगेट बनकर आ गए हैं। लेकिन यह चीज उन्हीं तक सीमित नहीं थी। मैंने देखा बेलगाँव कांग्रेस में खासी झड़प पंडित मोतीलाल नेहरू और चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य में हुई। दोनों दिग्गज लोग भी इस तरह से जोर-शोर के साथ विवाद कर सकते हैं और जबकि दोनों वकील थे और वकालत के पेशे में दक्ष थे और बहत आसानी से अपनी दलीलों को वकील जिस तरह से रखते हैं, उस तरह से रख सकते थे, लेकिन उसमें गुस्से का समावेश था। लालाजी को भी मैंने इस तरह से लोगों के साथ टकराते हुए देखा। अब जब मैं सोचता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि वह शायद हमारे 'फ्रस्टेशन' का जमाना था। हमारी आजादी की लड़ाई एक दलदल में आकर फँस गई थी और दलदल में फँसे रहने की वजह से जब कोई रास्ता आगे का नहीं सूझता तब लोग एक-दूसरे पर आक्षेप करने लगते हैं। अपनी असफलताओं को एक दूसरे के सिर पर मढ़ने लगते हैं, यह असफलता का बँटवारा करने की वृत्ति होती है और ऐसी वृत्ति मुझको 1924 की कांग्रेस में दिखाई दी।

57, सौम्या इस्टेट्स, बी.डी.ए. रोड, अवधपुरी,
भोपाल (म.प्र.) 462022 ●

मंत्रिमंडल का विस्तार

- मुकेश कुमार ऋषि वर्मा

मुख्यमंत्री जी बड़े बेचैन होकर अपने केबिन में टहल रहे थे। ए.सी. चालू थी, फिर भी माथे से पसीना टपक रहा था। दीवार पर टंगी टीवी बंद करके एक गिलास पानी एक सांस में गटककर अपने निजी सहायक को बुलाने हेतु बैल बजा दी।

पलक झपकते ही सहायक सेवा में हाजिर हो गया -

‘बताइए सर’...

‘टीवी पर जनता बहुत आक्रोश दिखा रही है, महंगाई-महंगाई चिल्ला रही है। जनता को हमारा विकास ही नजर नहीं आ रहा। अरे ! कल तक हमारे जो विधायक-सांसद हफ्ता वसूली करके घर चलाते थे वे आजकल रोज नये-नये पेट्रोल पंप, कोल्ड स्टोर, विदेशी गाड़ियां, फार्म हाउस न जाने क्या-क्या खरीद रहे हैं और जनता को हमारा विकास ही नहीं दिख रहा।’

मुख्यमंत्री जी एक सांस में पूरी राम कथा सुना दिए।

‘जी सर ! परंतु चुनाव का समय नजदीक है, अब सिर्फ पांच महीने बचे हैं। कुछ करिए?’

सहायक चाटुकारिता वाले लहजे में बोला।

‘हमने पूरा प्लान बना लिया है, मंत्रिमंडल में विस्तार कर रहे हैं। सभी जातिवादी, धर्म वादी चंदाचोरों, हरामखोरों, चोरों-लुटेरों को लॉलीपॉप देंगे। पांच महीने के मंत्री हमें पांच साल की राजगद्दी दिलायेंगे। जनता का क्या वो तो बेवकूफ है। ससुरी मर मिटेगी, जल भुनेगी धर्म जाति की भट्टी में’...

मुख्यमंत्री जी शैतानी मुस्कान बिखेरते हुए बाहर गार्डन में घूमने निकल गये और उनका निजी सहायक वुत बना उन्हें देखता रह गया।

केती-कोती

- पुष्पिता अवस्थी



दूसरे दिन शालिनी आज़ादी के मेले में थी। मेला उसकी आँखों में था। वह मेले की आँखों में थी क्योंकि वह भारतीय होकर भी अपने पति का हाथ पकड़े हुए घुम और झूम रही थी। उसे अपने बचपन के गाँव के मेले याद आ रहे थे।

नीग्रो जीवन के स्वाद से जुड़ी खाने-पीने की दुकानें...तरह-तरह के शीशे में बंद जंगली फलों के रस और खिचड़े फल, कनीपा फल बिक रहे हैं।...कहीं कसावा की ताज़ी रोटी सिंक रही है...जैसे भारत में डोसा बनता है। घिसी हुई बर्फ पर रंगीन मीठा शीरा...उसे बचपन की बर्फ बेचने वाले कल्लूनाज़ की याद दिलाती थी। तरह-तरह के नीग्रो परिधान...नीग्रो मोतियों और जंगली पत्तियों के पंखों के आभूषण।

पूरे दिन अधनंगे बदन घूमने वाले स्त्री-पुरुषों ने जींस-पैंट पहन रखी थी और उस पर पारंपरिक लूंगी को समेटकर वक्ष पर गाँठ लगा रखी थी। जिस पर हार्ट और अन्य आकृतियों की कंट्रास्ट में पेचवर्क था। सिर पर औरतों के सिर पर स्कार्फ थे जिनके कपड़े के फूल की गाँठ आगे की ओर माथे पर नाक की सीध पर रहती है।

बालों की चोटियाँ...और चोटियों में लगे हुए रंगीन बीट्स पर मेंडीदार चोटियाँ...जो नीग्रो हेअर स्टाइल की अलग पहचान भी थी।

जब से हिंदुस्तानी पुरखे इस देश में आए हैं तब से वह कफरी-जुका के साथ रह रहे हैं या यूँ कहा जाये कि इनकी आजादी के बाद से ही तो हिंदुस्तानियों और जवानीज़ लोगों को मज़दूर-माल के रूप में ढोया जाना शुरू कर दिया गया था। नीग्रो की आजादी पर ही हिंदुस्तानियों की गुलामी की इमारत खड़ी हुई थी।

नीग्रो बच्चियों और स्त्रियों के सिर पर इतनी तरह के हेअर स्टाइल थी जो हर चेहरे को विशेष बनाते थे। हर स्त्री के पास कम-से-कम दो-तीन छोटे बच्चे थे जो या तो गोद में थे या हाथ पकड़े हुए थे और जो नवयुवतियाँ और युवक थे वे भी एक-दूसरे का हाथ पकड़े...कहीं अकेले-दुकेले, कहीं ग्रुप में झूमते-नाचते मटरगश्ती करते हुए घूम रहे थे।

वहीं पाँचों पुल नामक जगह पर जहाँ कभी नहर बहती थी और एक पुल था,

यहीं ज़रूरत पड़ने पर गुलामी के समय में जब गुलामों को नंगा करके उनका गुसांग देखा जाता था जिससे उनके मजदूरी करने और युवा होने का अंदाज़ा लगा लिया जाता था और उनकी मजदूरी तय होती थी-इसे नृशंस सूरीनामी दर्दनाक स्मृति के रूप में पुलपाँच्चे के नाम से पहचानते थे।

शालिनी की आँखें उनकी आज़ादी दिवस की मस्ती में खोई हुई थीं। क्योंकि सुबह ही 1 जुलाई को टी.वी. पर गुलामी पर दिखाई फ़िल्म से वह सिहर उठी थी। गुलामों की पीठ पर लोहा गर्म करके वे उस पर अपने संगठन या कंपनी की मोहर लगाते थे। वह चिह्न उनकी पीठ पर उनकी मृत्यु के बाद तक बना रहता था। इसलिए वह सिर्फ़ नीचे की देह पर एक छोटा-सा कपड़ा भर लपेटे रहते थे। क्योंकि ऊपर के हिस्से पर कपड़ा रहेगा तो उनके संगठन का नाम नहीं दिखेगा। इधर से उधर ले जाने के लिए उन्हें भेड़-बकरियों से भी बदतर हालत में ठूँस-ठाँस कर भरकर ले जाते थे, जिसमें कई लोगों के पेट दबने से उल्टी होने लगती थी जो किसी की देह पर गिरती थी। गर्भवती स्त्रियों की बुरी हालत हो जाती थी। यह सब देखते हुए शालिनी का दिल हिल गया था। वह मनुष्य के इतने निर्दयी होने की कल्पना तक नहीं कर सकती थी।

शालिनी अब नीग्रो जाति की आज़ादी के जश्न का मतलब समझने लगी थी। जितना कि शायद ये आज़ादी जीने वाले लोग भी न समझते हों। आज के दिन को यह अपने लोगों की भाषा में केती-कोती कहते हैं, केती का अर्थ है जंजीर और कोती मतलब है-टूटना। यह जंजीर टूटने का जश्न होता है।

वाटर मूलन वेख के एक ओर से बादलों का धुआँ उठ रहा था। पश्चिम की ओर का डूबता हुआ...सूर्य उन पर अपनी आभा फेंक रहा था। आकाश में दो इन्द्रधनुष दिखायी दे रहे थे। दोहरे इंद्र धनुष को देखकर शालिनी उनसे ज़्यादा खुश थी। आज़ादी के मेले से

अधिक बड़ा उत्सव उसे आकाश में दिखाई दे रहा था। पारामारिबो प्रेसीडेंट हाउस के पीछे के मॉरीशस पालम पेड़ों के बड़े बगीचे में दुकानें लगी हुई थी...उसके संगीत के शोर...इसी में बादल भी अपना शोर करते हुए पालम-ट्री के ऊपर छते की तरह लगे हुए थे उनके आनंद में शामिल होने के लिए। दुकानदार दुकान में रहते थे...लेकिन मेलों के बीच में इधर-उधर दुकानों के लिए भागदौड़ करने लगते थे। बरसात शुरू होने पर शालिनी भी अपना बैग सिर पर रखकर अकरम का हाथ पकड़े हुए कार पार्किंग की ओर बढ़ गई। थोड़ा तेज़ चलती हुई, “अरे, पानी भीगने से गल थोड़े जाओगी। शूगर थोड़े ही हो तुम,” अकरम ने आनंद के लहजे से कहा, “हाँ-हाँ मैं शगर हूँ...तुम्हीं तो कहते हो...जल्दी चलो. गल नहीं जाऊँगी, पर भीग तो जाऊँगी...” शालिनी ने मीठी चुटकी लेते हुए अपनी बात भी कही...और तेज़ क़दमों से चलते हुए कार तक हो ली।

ग़ज़ब देश है! ऐसी चटख और तीखी धूप देखने में सुनहरी और उजली पर चमड़े तक का रंग बदल देती है और तीन-चार बजे के बीच में ऐसे काले बादल जैसे साक्षात् इंद्र देव ही पूरे आकाश में हो और ऐसी तेज़ बरसात होती कि घर, दुकानें तो किसी तरह बच भी जाते...पर खेत...खलिहान...ज़मीन...सड़क सब कई घंटों के लिए पानी में डूब जाते हैं।

एक बार शालिनी सारे दिन पारामारिबो के सिटी सेंटर की सबसे बड़ी बुक शॉप ‘फाको’ में थी...नई किताबों को खोजने में उसका दिमाग़ और आँखें लगी हुई थीं कि उसे तेज़ बरसात की आवाज़ ही नहीं सुनायी दी। सूरीनाम के घर मकान...डबल सीलिंग में होते हैं...ऊपर टीन की मजबूत छत...और भीतर में लकड़ी की खूबसूरत छत ऐसी कि ऊपर की टीन की छत का पता तक नहीं चलेगा। वहाँ बरसात होती है बाढ़ की झंकार की तरह और बरसात के रुकते ही सब कुछ शांत। शुरू में शालिनी, इस ध्वनि का, बहुत विभोर होकर

आनंद लेती थी...लेकिन धीरे-धीरे उसे इसकी आदत पड़ती गई थी।

पिछले दिन की बरसात की शालिनी अभी गूँज तक नहीं भूली है। जब फाको दुकान से किताबें खरीद कर बाहर आई तो सड़क नदारत थी। वहाँ सिर्फ एक फूट ऊँची नदी थी। मटियाला पानी। प्लास्टिक...पेपर केस...सॉफ्टड्रिंक्स...पारवोबीयर के खाली डिब्बे और प्लास्टिक अलग से उपला आए थे। चप्पलें और जूतों को लोगों ने हाथों में पहन रखा था। औरतों की देह में चिपके हुए कम-से-कम कपड़े हवा चलने पर ठंडक दे रहे थे। बरसात से भीगकर वे खश थीं। सड़कों का गंदा पानी तिस पर कुछ कारों का चुकचुक करके बंद हो जाना उन सबको परेशान किए हुए था। इसके बावजूद मुँह के सारे दाँत बाहर चमक रहे थे।

“अगर हॉलैंड में ऐसा होता तो अब तक फायर बिग्रेड की गाड़ियाँ तुरंत पम्प करके पानी बाहर कर देती” अकरम ने परेशान होते हुए कहा।

“हॉलैंड या यूरोप में ऐसा होता ही क्यों?...” शालिनी ने दो कदम आगे बढ़कर अपनी बात कही और आगे टोका, “यहाँ के लोगों को इस परेशानी में जीने की आदत है और यह इसको इन्जॉय करते हैं...इसलिए सरकार को भी कोई चिंता नहीं होती है। उनकी कुर्सी सही सलामत बनी रहे फिर चाहे देश का कुछ भी हो...थर्ड वर्ल्ड कंट्री के तक़रीबन सभी देशों का यही हाल है...टूरिस्ट को परेशानी ज़रूर होती है...देखो न हॉफ पैंट और स्लीपर पहनने के बावजूद वो डच नवदंपति कितने परेशान हैं-वे इस पानी में पैर रखने की हिम्मत नहीं कर पा रहे हैं...देखो न...यह क्रिस्नोपोलस्की होटल के सामने का हाल है। इसका मैनेजर भी कैसे यह दुर्व्यवस्था बर्दाश्त कर रहा है? उसके तो होटल की मार्किट वैल्यू गिर जाएगी।” शालिनी सड़क में आई इस आकस्मिक बरखा-बाढ़ से बुरी तरह परेशान थी।

किसी तरह वे दोनों अपनी कार में बैठे।

अकरम परेशान होकर भीड़ में कार ड्राइव कर रहे थे। रंगती हुई ड्राइविंग के साथ ट्रैफिक के बीच ड्राइविंग करना अकरम को पनिस्मेंट से भी अधिक बुरा लगता है। पर भारत में कहावत है- मजबूरी का नाम महात्मा गांधी!

यह सब सोचते हुए शालिनी अपनी आँखें चार किए हुए आजादी के मेले का जश्न समेटने में लगी हुई थी-वह आयोजन का अंतिम दिन था...पर सूरीनाम में अब तो कफरियों की आज़ादी का दिन हर दिन होता है...उन्हें कोई सामाजिक बंधन नहीं है। किसी भी स्त्री के साथ सो लिए। माँ बन गई तो पालने की जिम्मेदारी माँ को है, यदि वह भी नहीं हुआ तो अनाथालय की हैं...

शालिनी की एक अध्यापक मित्र ने एक बार उससे बताया था कि यहाँ के बहत से बच्चों के माँ-बाप दोनों नहीं हैं...किसी तरह वह रात का खाना जुटा पाते हैं...उनका कोई स्थायी ठिकाना नहीं है...इसलिए हम लोग बहुत से बच्चों के लिए ब्रेकफ्रास्ट बना कर लाते हैं। सुनते ही शालिनी काँप उठी थी और उसने कहा कि यहाँ के रेस्टोरेंट और होटलों से बात करो और संगठन बनाकर ऐसे बच्चों के लिए भोजन की स्थायी व्यवस्था करो। बड़ा पुण्य मिलेगा। शालिनी को अपना कहा अचानक यहाँ भी याद आ गया।

थोड़ा भीड़ से बाहर निकली और तोरारिका के दाएँ-बाएँ की सँकरी सड़कों से गुज़री...। जहाँ प्रायः ड्रग्स बेचने वाले घूमते रहते हैं...जब यह बात आम आदमी तक जानता है...भला पुलिस वाले क्यों नहीं जानते होंगे...? इसी तरह यहाँ की सड़कों के किनारे खड़ी सस्ती कॉल गर्ल्स मिल जाती हैं...ज़रा-सा होटलों में रहने वाले...थोड़ा लूस होकर बातें करें...तो उन्हें होटल के बाहर भी कदम नहीं रखना पड़ता है। रात भर के लिए स्त्री-देह उन्हें कैम्पस में ही मिल जाएगी। खुली जाँघे और छाती उधारू पहनावे यहाँ की स्त्रियों के आम वस्त्र हैं...फिर वे कफरी हो या जावानीज़ या चायनीज़ और अब तो हिंदुस्तानी भी। वर्जिनलैंड के नाम से जानी

जाने वाली इस दक्षिण अमेरिकी और कैरीबियाई धरती की औरतों को वर्जिन पाना बहत ही मुश्किल है। बारह-तेरह बरस की बच्चियाँ तक संभोग सुख जान चुकी होती हैं। युवा होने तक इतने लड़के-युवक और आदमियों के बीच से उनकी देह, देह यात्रा कर चुकी होती है कि भारत देश में ऐसी स्त्री को वेश्या के खाते में आसानी से डाल दिया जाता है।

“आज़ादी का मेला देखने के बाद भी इतनी चुप हो। आखिर क्यों?” अकरम ने शालिनी की चुप्पी तोड़ी। तब उसे अहसास हुआ कि वह किस सोच में डूबी हुई थी।

“नहीं तो।” डबडबायी आवाज़ में उसने सिर्फ इतना ही कहा।

“किधर को चलें?” भीड़ से पूरी तरह निकलने पर एक लंबी साँस लेते हुए अकरम ने पूछा।

“वहीं जहाँ पहली बार हम दोनों ने साथ एक बीयर पी थी, वहीं चलकर सूरीनामी नदी के तट पर बैठते हैं। अटलांटिक महासागर के तट को भी देखते हुए और जहाँ पर ब्राजिलियन दो लम्बे बड़े पापाखाई तोतों की अलग से प्रेम की टेर सुनायी देती है और जो तोते अपने पंजों पर नर्तकों की तरह झूमते हैं।” शालिनी ने बहुत रोमांटिक होकर याद दिलाया।

“हाँ...उस समय जब तुम्हें लव-फीवर चढ़ा हुआ था और जब तुम्हें सिर्फ प्रेम के रंग ही दिखाई देते थे।” अकरम ने शालिनी की आँखों में उतरते हुए कहा। बादलों का प्रकोप कम हो गया था। बरसात झीनी हो गई थी। शालिनी को लगा पाँच मिनट में यह बरसात बंद हो जाएगी और वे भी पहुँच जाएँगे।

सूरीनामी नदी के तट के सामने उजड़ा हुआ स्टारडस्ट होटल था...। पर अभी जीवित था। उस होटल के कमरे और कारीडोर की दीवारों पर अब्दुल ऑयल पेंटिंग लगी हुई है...एक छोटे से मीटिंग हॉल में तो प्रायः स्त्री की नग्न तस्वीरें ही हैं विभिन्न मुद्राओं में और बाकी

कमरों में भी इसी तरह की पेंटिंग हैं जिसमें नदी... नाव... जंगल... फलों का सहारा लेकर स्त्री-पुरुषों के मिलन की भंगिमाओं को चित्रित किया गया है। खैर...उस डच पेंटर का बहुत नाम नहीं है-शालिनी स्वयं कला विशेषज्ञ है इसलिए उसे भी उसकी पेंटिंग बिकने का कारण समझ में आ चुका था।

बहुत कारों के बीच में अकरम ने अपनी कार लगायी...उसने रेस्तराँ को उजड़ा हुआ देखा। पेंट...उड़ गया था...फिर भी दोनों ने दाएँ-बाएँ देखा...शायद कहीं से भीतर जाने का कोई रास्ता हो, पर बुरी तरह से बंद था...वहाँ से न्यू एम्सटर्डम जाने के लिए चलताऊ बोट जाती थी...कुछ लोग जाने-आने में लगे हुए थे पर अधिकांश चायनीज़...हिंदुस्तानी...सब वहीं तट पर खड़े सूरीनामी हवा का आनंद ले रहे थे।

शालिनी बहुत मायूस-सी अकरम के कंधे पर हाथ रखे हुए उदास थी। इतनी जल्दी दो वर्ष के भीतर उसके बीयर पीने की जगह उजड़ जाएगी और वह उसकी स्मृति का इतिहास भर बनकर बचेगी। अकरम भी ऐसा ही सोच रहा था...और गुमगीन था। फिर उस ओर पीठ करके वे दोनों भी औरों की तरह सूरीनामी नदी से होकर आती हुई हवा का आनंद लेने लगे थे कि “वह देखो न्यू एम्सटर्डम” तट पर अकरम ने उँगली उठाकर इशारा किया।

“हाँ-हाँ...याद है आने के तुरंत बाद मैं सीधे तुम्हारे घर आया था और बिना रुके-ठहरे तुम्हें लेकर घूमने निकल पड़ा था और वहाँ से हम दोनों सीधे न्यू एम्सटर्डम पहुँचे थे। हॉलैंड के एम्सटर्डम से सूरीनाम न्यू एम्सटर्डम की यात्रा बहुत रोमांचक थी। क्योंकि उस यात्रा में हम दोनों के प्रेम की यात्रा भी समायी हुई थी। कहने भर को ‘न्यू’ है। लकड़ी के इतने पुराने घर हैकमोसारेस बिल्डिंग...पुलिस बिल्डिंग और लोगों के घर...जैसे कोलोनेयिल पीरियड के हो...पुरानी मरी हुई...न बोलने और न काम करने वाली तोपें सिर्फ

इतिहास की गवाह बनी पड़ी हुई हैं-समय के संग्रहालय में...।”

डच लोगों ने पूरे सूरीनाम में...हॉलैंड की जगहों के अनुसार ही नाम रख छोड़े हैं। आरनेम... लेडिंग... अलकमार और न जाने क्या-क्या...? अभी चार दिन पहले अलकमार गई थी तो पुरानी लकड़ी के बने हुए छोटे कमरे के आकार की खाट थी फिर वहाँ से स्टीमर वाली पुरानी नावें चलती थीं। दम बुर्ख के उस पार के दो तटों पर फलों...और अन्य पर गायों का पालन होता था। जहाँ दस हजार गायों के पालन का व्यवसाय एक डच परिवार चला रहा था और दूसरे तट पर भी डच दंपति फलों की खेती करके फलों का प्लांटेशन और जूस का धंधा चलाते थे...।

सप्ताह के अंत में जाने वाले एक अधेड़ हिंदुस्तानी ने बताया था कि उसके माँ-पिता जो अस्सी के ऊपर के थे और भाई-बहिन वहीं रहते थे वह उनसे मिलने जा रहा था...उसकी इतनी हिम्मत देख शालिनी ने नाम पूछा था। उसने बताया, “दिलीप कुमार।”

“बॉलीवुड एक्टर दिलीप कुमार को ध्यान में रखकर नाम रखा था क्या?” अकरम ने अटकलें लगाते हुए पूछा।

“हाँ...हाँ...भईया-ठीक...जानइयो...दिलीप कुमार जो फिल्म में खेल खेलता रहा...तो हमारा नाना ओही के ऊपर ले कर बस नाम धर दीहे...” दिलीप ने खुशी से जवाब दिया।

भारत के कुछ पुरखे खेती के साथ-साथ बढ़ई और दर्जी का भी कारोबार करते थे। और उसकी मित्र बता रही थी कि उसके हस्बैंड जो आज मंत्री हैं उनके पिता एक प्रसिद्ध दर्जी थे। मुहम्मद रफी और मुकेश अपने अमेरिका दौरे के दौरान सूरीनाम भी गए थे तो उनके बैग अटैची वगैरह हवाई यात्रा के दौरान कहीं इधर-उधर हो गए थे। उन्हें कार्यक्रम देना था। तब उन्हीं के पिता ने रात में शेरवानी और चूड़ीदार सिलकर तैयार

किया था। रफी साहब को तो इतना भाया था कि उन्होंने पाँच जोड़ी शेरवानी और पजामा सिलवाए थे। शालिनी इससे इतनी प्रभावित हुई थी कि जब वह अस्सी वर्ष के टेलर साहब से मिलने गई तो उन्होंने उसे शेरवानी पहने हुए मुकेश और रफी साहब के साथ की अपनी खिंचवायी हुई फोटो दिखायी थी, जिसमें वे भी युवा थे और वह टेलर भी।

सत्तर से पहले सूरीनाम में सिनेमा ज़िन्दा था। तीन थियेटर चलते थे...सावित्री, यशोदा, द पारल जिसमें ब्लैक एण्ड व्हाइट हिंदुस्तानी फ़िल्में आती थीं ‘मदर इंडिया’ अनारकली फ़िल्में अकरम ने वहीं देखी थी। हिंदुस्तानियों से हॉल भरा रहता था और वे सिनेमा देखते समय बहुत चिल्लाते और शोर मचाते थे। शालिनी को उसकी दोस्त ने बताया था कि यही कारण है कि उसके पिता और ससुर आदि राजकपूर की तरह की मूँछे रखवाते थे...और उनकी उम्र के संगी-साथी भी। क्लीन-शेव रहने का चलन बहुत बाद में आया।

अब तो बॉलीवुड का भी चाल-चलन बहुत बदल गया है। उसी के अनुसार लोगों के रंग-ढंग इतने बदल गए हैं कि बढंगे और बुरे लगने लगे हैं। तीन-चार टी.वी. स्टेशन में रात-दिन आधुनिक फ़िल्में दिखायी जाती हैं। इसीलिए सिर्फ़ फ़िल्मों के थियेटर ही नहीं...नाटकों के थियेटर भी इस देश में मर गए हैं...हिंदुस्तानियों के लिए मिलन समारोह के स्थल मंदिर हैं या मस्जिद, तो ईसाईयों के लिए चर्च...। व्यक्तिगत मनोरंजन के लिए जंगल और नदी तट बचे हुए हैं, और उसी में आनंद का भोग-विलास होता है।

नीग्रो की केती-कोती दिवस के समारोह से लौटते हुए शालिनी को लगा। आज़ादी का मतलब जीने के बाद ही समझ में आता है। कहीं दासता की देह से आज़ादी का जन्म तो नहीं होता है।

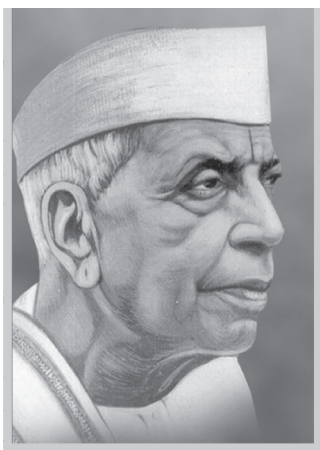
नवंबर, 2013

नीदरलैंड ●

युगानुभूति के चितरे मैथिलीशरण गुप्त

राजेन्द्र परदेसी

मैथिलीशरण गुप्त ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही भारत-भारती के मन्दिर में अपने काव्य-सुमन चढ़ाने आरम्भ कर दिये थे और अर्द्ध-शताब्दी से भी अधिक समय तक अनवरत रूप से भारत-भारती के भण्डार की पूर्ति करते हुए अनन्य भाव से अपने काव्य-सुमनों द्वारा पूजा-अर्चना करते रहे। इतनी दीर्घावधि तक साहित्य-देवता की पूजा-अर्चना करने का सौभाग्य विरले ही साहित्यकार को प्राप्त होता है। इसी कारण गुप्त जी ने जीवन और जगत की विषय परिवर्तित गति-विधियों का भली-भांति साक्षात्कार किया था और साहित्यिक क्षेत्र में होने वाले अन्यान्य परिवर्तनों का भी बड़ी तत्परता एवं लगन के साथ अध्ययन एवं अनुशीलन किया था।



गुप्त जी ने जिस समय अपने साहित्य का सृजन आरम्भ किया उस समय सामाजिक क्षेत्र में एक ओर तो राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज के विचारों से आन्दोलित होकर समाज, वर्ग एवं वर्ण सम्बन्धी भेद-भाव भूलकर एकता और समता की ओर अग्रसर हो रहा था, पारस्परिक सहानुभूति एवं संवेदना से ओत-प्रोत होने लगा था, और छूआछूत, बहुविवाह, सामाजिक विषमता आदि परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील था। दूसरी ओर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के विचार से आन्दोलित होकर भारतीय समाज बाल-विवाह, बहु-विवाह अस्पृश्यता, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, आदि कुप्रथाओं का विरोध करता हुआ, शुद्धि आन्दोलन द्वारा अस्पृश्य भाईयों को गले लगा रहा था, वेदों को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हुए भारत के अतीत कालीन गौरव की ओर आकृष्ट हो रहा था। जाति-पाँति की कष्टप्रद प्रथा को तोड़कर अन्तरजातीय विवाह को प्रश्रय दे रहा था और स्त्री-स्वातंत्र्य को प्रश्रय देकर नारी शिक्षा की भी प्रेरणा दे रहा था। तीसरी ओर थियोसोफिकल सोसाइटी, राधास्वामी मत, प्रार्थना समाज आदि संस्थाओं और स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के विचारों से प्रभावित होकर भारतीय समाज

उत्तरोत्तर विश्व-बन्धुत्व सर्वभूतहित, लोक-सेवा, सामाजिक समानता, स्वार्थपरता का परित्याग निष्काम कर्म अस्पृश्यता निवारण, देश एवं जाति के लिए सर्वस्व त्याग एवं बलिदान, पुरुषार्थ की महत्ता, नारी की गरिमा, हिन्दु-मुस्लिम एकता, सांस्कृतिक समानता, भेद में भी अभेद दिखता मानवतावाद आदि के विचारों को अपनाता चला जा रहा था।

मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य में युग के उक्त सामाजिक विचार-स्थान-स्थान पर व्यक्त हुए हैं। उन्होंने देखा कि समाज की प्रगति में यह ऊँच-नीच की भावना बड़ा व्याघात उत्पन्न कर रही है। समाज का एक वर्ग अपने को उच्च एवं उन्नत समझ कर समाज के दूसरे वर्ग को नीच एवं पतित कहना शुरू कर दिया है। उसे समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया है तथा उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसकी प्रगति एवं उन्नति के पथ को सदैव के लिए अवरुद्ध कर दिया है। गुप्तजी समाज के उस वर्ग को भी समान आदर एवं प्रतिष्ठा दिलाने के लिए कहते हैं

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय है।

तुम हो सहोदरी सुरसरी के चरित जिसके गेय है।।

गुप्तजी जानते थे कि भारतीय समाज में धर्म, जाति, मत, सम्प्रदाय, प्रान्तीयता भाषा आदि के आधार पर अनेक भेद-प्रभेद दिखाई देते हैं, जिनसे निरंतर सामाजिक विषमता की वृद्धि हो रही है और हमारी एकता एवं अखण्डता नष्ट होती चली जा रही है। कवि ने इस व्याप्त भिन्नता में भी अभिन्नता को देखने की अथवा भेद में भी अभेद दृष्टि रखने की सलाह दी, जिससे सामाजिक एकता खण्डित न हो और हम विदेशी सत्ता के चंगुल से मुक्त होकर सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त कर सकें।

**अनुदारता-दर्शक हमारे दूर सब अविवेक हों
जितने अधिक हों तन भले हैं, मन हमारे एक हो
आचार में कुछ भेद हो पर प्रेम हो व्यवहार में**

देखें, हमें फिर कौन सुख मिलता नहीं संसार में

गुप्त जी ने समाज की विषमता को दूर करने के लिए समाज में क्रान्ति लाने का उद्घोष किया है और सदैव सजग एवं जागरूक होकर अपनी श्रीवृद्धि में प्रेरणादायक युगानुकूल कार्यों के करने की सलाह दी—
**अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी
सजग रहो, उससे दुर्बलता और दीनता होगी
जिस युग में हम हुए, वही तो अपने लिए बड़ा है
अहा हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है।**

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज में नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया। तत्कालीन समाज में नारी का जो तिरस्कार हो रहा था तथा उसके प्रति जो अनुदार दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था उसके प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं—

**हाय वधू ने क्या वर विषयक एक वासना पाई
नहीं और कोई क्या उसका पिता, पुत्र या भाई
नर के बांटें क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई
माँ, बेटी या बहन हाय! क्या संग नहीं वह लाई।**

इससे आगे और कहते हैं—

**अविश्वास, हा! अविश्वास ही नारी के प्रति नर का
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं, स्वामी है वह, घर का,
उपजा किन्तु अविश्वासी नर हाय! तुझी से नारी
जाया होकर, जननी भी है तू ही पाप-पिटारी।**

कवि ने इसके साथ नारी को अपने स्वामी के कार्य में समभाग लेने वाली अर्धांगिनी कहकर समाज में पुरुष के समान ही स्थापित किया है—

**जिन स्वामियों के कार्य में समभाग जो लेतीं न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे
तो फिर कहाती किस तरह अर्धांगिनी सुकुमारियां
तात्पर्य यह-अनुरूप ही थी नरवरो से नारियां**

गुप्तजी ने अपने युग के धार्मिक विचारों का भली-भांति अध्ययन किया और यथोचित रूप में अपने काव्यों में उन्हें अंकित करके जन-जीवन में नवीन

धार्मिक क्रान्ति लाने का प्रयत्न किया गुप्तजी परम वैष्णव थे और राम के अनन्य भक्त थे, परन्तु उनमें संकीर्णता नहीं थी। वे सभी धर्मों में मान्य महापुरुषों एवं अवतारों के प्रति अमित आस्था एवं विपुल विश्वास रखते थे। इसी कारण आपने 'हो गया निर्गुण सगुण साकार है' कहकर जहाँ राम का स्वतन्त्र किया है, वहाँ राम के समान ही कृष्ण में अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हुए, 'धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग' कहकर दोनों का एक ही सत्ता स्वीकार की है। इसी तरह 'गुरुकुल' काव्य की रचना करके सिक्खों के धर्मगुरुओं के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रगाढ़ आस्था प्रकट की है और 'काबा तथा कर्बला' की रचना करके मुसलमानों के धर्म-गुरु मुहम्मद साहब के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति प्रदर्शित की है। इतना ही नहीं 'मंगलघट' में आकर तो आपने स्पष्ट स्वीकार किया है कि राम, रहीम, बुद्ध और ईसा में कोई अन्तर नहीं, सभी उस एक ईश्वर के रूप हैं -

**राम रहीम बुद्ध-ईसा का
सुलभ एक सा ध्यान यहाँ,**

मैथिलीशरण गुप्ता एक ईश्वर में सुदृढ़ विश्वास और अटूट आस्था रखने पर बल देते हुए तत्कालीन धार्मिक जगत में व्यास नानादेव वाद के अन्तर्गत एक हरि के दर्शन करने का आग्रह किया और 'सर्व देव नमस्कार : केशव प्रति गच्छति' के सिद्धान्त का प्रचार किया, साथ ही समाज में व्यास धार्मिक संकीर्णता का घोर विरोध करते हुए सभी सम्प्रदाय एवं सभी साधना-पद्धतियों के प्रति समान प्रकट करने के लिए आग्रह किया और सभी धार्मिक पुस्तकों में व्यास सदुपदेशों को ग्रहण करके अपने जीवन को समुन्नत बनाने की सलाह दी। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वेद एवं कुरान सभी धर्म-ग्रन्थों में एक जैसा ही सदुपदेश भरा हुआ है। उनसे शिक्षा ग्रहण करके सबको लोक-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए -

**उपदेशक जनजगत में, जितने हुए प्रमाण,
उन सबका उपदेश है, एक लोक कल्याण,**

**जहाँ भेद है रीति में, नहीं नीति में भेद,
सदुपदेश है एक ही, क्या कुरान क्या वेद,**

गुप्तजी नहीं चाहते थे कि हिन्दु और मुसलमान भारत की दो प्रमुख जातियाँ धर्म के नाम पर परस्पर लड़ती रहे और इनमें फूट डालकर अंग्रेज अपनी शासन-सत्ता को सुदृढ़ एवं स्थायी बनाते चले जाये। इसी कारण आपने धर्म के नाम पर लड़ने वाले हिन्दु और मुसलमान दोनों को सचेत एवं सावधान किया -

हिन्दु मुसलमान दोनों अब छोड़े यह विग्रह की नीति

गुप्तजी ने सिद्धराज में हिन्दु-मुसलमानों के पारस्परिक धार्मिक कलह पर क्षुब्ध होकर स्पष्ट घोषणा की है कि ईश्वर एक है, उसे विविध रूपों में पूजा जाता है। अतः ईश्वर के नाम पर कलह करना उचित नहीं, वह तो भक्त के भाव का भूखा है। तभी तो सिद्धराज मुसलमानों से कहता है

**कह दो पुकार कर तुम-वह एक है
और हम पावे उसे चाहे जिस रूप में
ईश्वर के नाम पर कलह भला नहीं
देखता है भाव मात्र वह निज भक्त का।**

मैथिलीशरण गुप्त ने सक्रिय राजनीति में अधिक भाग नहीं लिया। परन्तु अप्रैल 1941 में उन्हें कुछ राजनीति गतिविधियों में सम्मिलित होने के कारण राजबन्दी बनाये गए और विभिन्न जेलों में रखने के बाद उन्हें 14 नवम्बर 1941 को छोड़ दिया गया। इस कारावास के कारण गुप्ता जी को राजनीति में उतरने के लिए बाध्य तो किया, परन्तु वे अपने साहित्य के माध्यम से ही राजनीति में भाग लेते रहे। उनके इन राजनीतिक विचारों की अभिव्यक्ति उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलती है। सर्वप्रथम 'भारत-भारती' की रचना करके देशवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सचेत एवं सावधान किया और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का आग्रह किया -

शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।

संभव नहीं है, किन्तु जो सर्वांश में इष्ट हो।

मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ एक ओर सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टियों से अपनी युगानुकूलता का परिचय दिया है, वहीं वे साहित्यिक दृष्टि से भी पूर्णतः युग के साथ-साथ चले हैं। गुप्तजी का आविर्भाव मुख्यतया द्विवेदी युग में हुआ था और तत्पश्चात् वे छायावादी युग प्रगतिवादी युग एवं प्रयोगवादी युग के अन्तिम चरण तक विद्यमान रहे।

द्विवेदी युग में राष्ट्र प्रेम, देश-भक्ति सांस्कृतिक जीवन की महत्ता नारी की गरिमा, प्राचीन राज्यादर्श, समृद्ध अतीत के मनोरम चित्रों के अतिरिक्त प्रकृति का स्वतंत्ररूप में चित्रण भी आरम्भ हो गया था। परन्तु गुप्तजी ने उसे स्वतंत्र रूप से अंकित करके उसकी नैसर्गिक सुषमा की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आरम्भ कर दिया था। जैसे-हम ग्रीष्मागमन की पंक्तियों से देख सकते हैं -

**फूलों और फलों से शोभित हरे-भरे सौंदर्य निधान
चार दिवस पहले जो पादप देते थे आनन्द महान
दावानल में सम्प्रति वे ही अहो, भस्म हो रहे समूल
कहो, क्या नहीं कर सकता है
जब होता है विधि प्रतिकूल**

द्विवेदी युग की स्थूल एवं बाह्यार्थ निरूपणों तथा इतिवृत्तात्मक कविता प्रणाली के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन हुआ और इस आन्दोलन के फलस्वरूप, हिन्दी काव्य क्षेत्र में छायावाद का जन्म हुआ। इसमें हिन्दी कविताओं में स्वच्छन्दवाद को प्रश्रय मिला और लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता उपचार-वक्रता, मानवीकरण आदि से ओत-प्रोत रहस्यात्मक संकेतों से भरी हुई सूक्ष्म भाव-व्यंजक कविताएँ लिखी जाने लगीं। इनमें पुनः श्रृंगार की प्रधानता हो गई। किन्तु अब श्रृंगार के स्थूल चित्रण के स्थान पर उसके वायवी रूप का चित्रण अधिक होता था और प्रकृति के भी चित्रात्मक एवं संवेगात्मक रूप का चित्रण अधिकता के साथ किया

जाता था गुप्त जी भी इन कविताओं से प्रभावित हुए और आपने भी छायावादी रचना-शैली के आधार पर कितने ही गीत लिखे, जो झंकार में संकलित हैं। जिनमें कतिपय रहस्यवादी हैं और ध्वनि चित्रण, गति-चित्रण, मानवीकरण, प्रतीकात्मकता आदि के कारण इनमें छायावादी शैली का यत्किंचित पुट विद्यमान है। इन गीतों में छायावादी प्रगीत मुक्तक-शैली को भी अपनाया गया है और 'अच्छी आँख मिचौली खेली, बार-बार तुम छिपो और मैं खोजूँ तुम्हें अकेली' कहते हुए रहस्यवादी शैली को भी अंगीकार किया है। इतना ही नहीं, कवि ने 'यशोधरा' में भी छायावादी शैली का अनुसरण करते हुए कतिपय ऐसे गीतों की रचना की है, जिनमें लक्ष्णिकता, प्रतीकात्मकता, उपचारवक्रता एवं मानवीकरण का पुट विद्यमान है और जो कवि की आत्मानुभूति के सूक्ष्म रूप को प्रस्तुत कर रहे हैं -

रूदन का हंसना ही तो गान

गा-गा कर रोती है, मेरी हुत्तन्त्री की तान

छेड़ों न वे लता के छाले, उड़ जायेगी धूल

हलके हाथों प्रभु के अर्पण कर दो उसके फूल

छायावाद में वायवी श्रृंगार-परक चित्रणों के अन्तर्गत सौन्दर्य के स्वप्न अंकित किए गए थे। अब उसकी भी प्रतिक्रिया हुई, क्योंकि कवि जन अभी तक जीवन की विषमताओं को भूलकर सौन्दर्य के स्वप्न देखने में ही लीन रहे थे। अब काव्य को यथार्थ की कठोरता एवं कर्कश भूमि पर खड़ा करने का प्रयत्न आरम्भ हुआ और साम्यवादी विचार धारा के आधार पर सामान्तशाही एवं पूंजीवाद का विरोध करते हुए किसान, मजदूर एवं सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना प्रकट करना कवि का प्रमुख कर्तव्य बन गया। गुप्तजी इस प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए और उन्होंने किसानों में किसानों की दयनीय दशा के चित्र अंकित करके 'पृथ्वीपुत्र' में आकर कार्ल मार्क्स के विचारों को भी काव्य-रूप दिया -

धनरूपी फल का परिश्रम ही मूल है
किन्तु श्रमिकों को

फल मिलता है कितना ?

पूँजीपतियों का नहीं जूठन भी जितना

इतना ही नहीं 'साकेत' में भी गुप्तजी का

प्रगतिवादी स्वर सुनाई दे रहा है -

विगत हों नरपति रहें नर मात्र,

और जो जिस काम के पात्र

वे रहें जन पर समान-नियुक्त,

सब जियें ज्यों एक ही कुल भुक्त

मैथिलीशरण गुप्ता ने प्रगतिवाद से आगे बढ़कर यशोधरा, द्वापर, विष्णुप्रिया, जयभारत आदि काव्य रचना में नवीन प्रयोगों की ओर अपनी रुचि दिखाकर प्रयोगवादी विचार धारा को भी आत्मसात करने का प्रयत्न किया है।

सारांश यह है कि मैथिलीशरण गुप्त युग की विचारधारा से पूर्णतया अवगत होकर कवि कर्म में प्रवृत्त हुए दिखाई देते हैं। उनमें संकीर्णता, रूढ़िवादिता एवं मतवादिता नहीं थी। इसी कारण ज्ञान की सभी खिड़कियां वह सदा खुली रखते थे और युग में जो जो परिवर्तन समय-समय पर हो रहे थे, उन्हें अपनी कृतियों के माध्यम से जन साधारण तक पहुँचाने का स्तुत्य कार्य करते रहे। इसीलिए उनके काव्य में युग का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनकी प्रतिभा कालानुसारणी है। जिसकी प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-“गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है, कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य-प्रवृत्तियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति” यही कारण है कि मैथिलीशरण गुप्त की सभी रचनाओं में अपने युग का सजीव चित्रण मिलता है।

- शिवविहार, फरीदी नगर, लखनऊ (उ.प्र.) ●

लघुकथा



अवधेश तिवारी

सूर्य लोक में संपाती

अपने अंतर्मन की आवाज़ सुनकर सूरज को छूने की होड़ में संपाती आकाश की ओर उड़ चला। ओज और उल्लास में भरकर वह आसमान की अनंत ऊँचाइयों में बढ़ते गया, बढ़ते गया.. और सूर्य के प्रखर ताप से अपने पंख जलाकर धड़ाम-से भूमि पर गिर पड़ा।

भूमि पर पड़े-पड़े कई दिन व्यतीत हो गए। आखिर तेजस्वी-मनस्वी संपाती वैसी दीन-हीन अवस्था में कब तक पड़ा रहता! अचानक एक दिन उसके अंतर्मन से फिर कोई आवाज़ उठी। उसकी आँखें नई आशाओं से चमक उठीं। संपाती अब ऊपर उड़ने में भले ही असमर्थ था पर मन की गहराइयों में जाने में तो समर्थ था न.. अब वह मन की गहराई में उतरने लगा.. वह अंतर्मन की अनंत गहराई में उतरते चला गया.. उतरते चला गया, गहरा.. गहरा.. और गहरा। उसने आँखें बंद की और कई दिनों तक मन के अंधकार के निबिड़ को पार करता रहा। और एक दिन अचानक संपाती उल्लास में भरकर हर्ष से चिल्ला पड़ा, “पा लिया.. पा लिया..।” संपाती ने महसूस किया, उसके अंदर चारों ओर प्रकाश फैला हुआ था। उसकी तेजस्विनी आत्मा से सहस्रों सूर्यों का प्रकाश निर्झरिणी की तरह सतत् बिखर रहा था। संपाती उन्मादियों की तरह चिल्ला रहा था, “पा लिया.. मैंने सूर्यलोक पा लिया..।”

संपाती ने कई दिनों के बाद आनंद से अभिभूत होकर आज अपनी आँखें खोलीं। सामने राम खड़े मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे और संपाती के दोनों पंख उसकी देह में नई उड़ान भरने के लिए तैयार थे।

छिन्दवाड़ा (म.प्र.) ●



अशोक 'अंजुम'

ये चिकनगुनियाँ

बड़ी बेदर्द बीमारी है यारो ये चिकनगुनियाँ सभी कहते कि हत्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ हर इक तूफान पे भारी है यारो ये चिकनगुनियाँ मगर फिर भी हमें प्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ

कहोगे आप भी क्या फ़ालतू की बात है ये भी न जाने किस तरह के आदमी की जात है ये भी चिकनगुनियाँ शरीके रोग से ये इश्क करता है चिकनगुनियाँ कि जिससे हर कोई इंसान डरता है चिकनगुनियाँ के मच्छर से कहीं इसका न रिश्ता हो, बंधा हो या कमीशन डॉक्टरों से इसका सौदा हो, बजाए जा रहा है ऐसी बीमारी की झुनझुनियाँ अरे, हमको बहुत प्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ

मैं कहता हूँ नहीं ऐसा नहीं कुछ भी मेरे यारो मैं कहता हूँ नहीं धोखा नहीं कुछ भी मेरे यारो अजी मेरा तो ये किस्सा जहाँवालो अलहदा है न मच्छर से कोई रिश्ता न डॉक्टर से ही सौदा है हमारी देह मुरझाई तो सारे देखने आये यहाँ के और वहाँ के सब हमारे देखने आये कि जुगनू देखने आये, सितारे देखने आये नज़र क्या चीज़ है यारो नज़ारे देखने आये नज़ारे वो कि जिनकी इक नज़र को हम तरसते थे नज़ारे वो कि जिनकी आँख से शोले बरसते थे नज़ारे वो जिन्हें पाने को हम घण्टों भटकते थे

नज़ारे वो जिन्हें पाने को खिड़की पर लटकते थे वही मुन्नी भी आई थी, वही शीला भी आई थी, कि इनकी इक नज़र ने देह में ताक़त बढ़ाई थी मरे से, मार खाये से बदन में झुरझुरी आई लहू दौड़ा सलीके से बदन की डाल मुसकाई

कोई जादू हुआ शायद मैं कुछ दिन में हुआ चंगा निखर आया दोबारा से वो मेरा जिस्म बदरंगा हुआ फिट तो प्रपोजल झट से शीला को था भिजवाया मगर उसने उदासी से मुझे ये राज़ बतलाया कि उसका दिल भी मेरे वास्ते कब से धड़कता था कि मेरे नाम से तब जिस्म का कन-कन फड़कता था मगर इज़हार में तुमने बड़ी ही देर कर डाली कि अब मुंबई का इक बंदा है मेरे बाग़ का माली

हुआ शीला से जब मायूस, मुन्नी का खयाल आया कि लिखकर प्रेम से इक पत्र मुन्नी को भी भिजवाया तभी मुन्नी ने मेरे मन में दीपक से जलाये थे उधर से भी मोहब्बत से भरे पैग़ाम आये थे चिकनगुनियाँ ने हम दोनों के तब टाँके भिड़ाये थे चिकनगुनियाँ के कारण ही तो दो दिल झिलमिलाये थे वो दिन भी आ गया जब वक्त ने बाजे बजाये थे बराती टुन्न होकर खूब नाचे, टुनटुनाये थे

कि अब मैं हूँ औ' मुन्नी है, हैं संग में मुन्ना औ' मुनियाँ तभी हमको बहुत प्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ बड़ी बेदर्द बीमारी है यारो ये चिकनगुनियाँ सभी कहते कि हत्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ हर इक तूफान पे भारी है यारो ये चिकनगुनियाँ मगर फिर भी हमें प्यारी है यारो ये चिकनगुनियाँ

स्ट्रीट-2, चन्दविहार कॉलोनी, नगला डालचन्द,

क्वासी बाईपास, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202002 मो.- 09258779744



लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'

3. माँ पीताम्बरे!

मातु जगजननि पीताम्बरे दशा निहार,
भारत अत्यंत अति शरण में लीजिये।
मानवता के समस्त बैरियों के बक्ष फार,
हृदय विदार, शीश ही उतार दीजिये।।

मातु शत्रुघातिनी है विश्व आज भयभीत,
आतताई छद्म-जाल क्षार-क्षार कीजिये।
धर्मधीर भारत के वीर सपूतों को मातु,
शत्रुनाशिनी अमोघ शौर्य-शक्ति दीजिये।।

4. नारीशक्ति समस्त शक्तियों की प्राणशक्ति

नारीशक्ति है समस्त शक्तियों की प्राणशक्ति,
भारत की धरती पुरातन से गाती है।

वीर सपूतों के शौर्य साहस में वसती जो,
माताओं के दूध की ही शक्ति उफनाती है।।

बहिनों की राखी शक्ति भुजाओं में भरती है,
भामिनी की शक्ति-शक्ति का ही ज्वार लाती है।

निज आन वान राष्ट्रस्वाभिमान-रक्षण में,
भारत की बेटी महाकाली बन जाती है।।

- ईशानगर, छतरपुर (म.प्र.) मो.-62325 23552

1. श्री माता धूमावती देवी

देवि महाकाल की अखण्ड शक्ति धूमावती,
मातु मेरे राष्ट्र पै कृपा की कोर कीजिये।
चीन बार-बार षड्यंत्र रच रहा मातु,
चीन का गरुर चूर-चूर कर दीजिये।।

भारत के बाह्य और आंतरिक शत्रुओं की,
सारी क्रूर शक्ति अविलम्ब हर लीजिये।
विश्व के बन्धुत्व का किरीट भव्य भारत है,
इसका सम्मान कभी गिरने न दीजिये।।

2. श्री जगजननी माँ तारा आज वैश्विक संकट की घड़ी में विश्व-रक्षणार्थ पुनः निवेदन-

मातु तारा तुम्हारी कृपा से तरती समष्टि,
संकटों से घिरी आज मानवता तारिये।

गो का वंश धरती का है परम पूर्ण प्राण,
गो के वंश-रक्षण से विश्व को सँवारिये।

मातृशक्ति-मान और भ्रातृ-भाव का सम्मान,
आज सारे विश्व-जनमानस में धारिये।

स्नेह और करुणा की वृष्टि कीजियेगा मातु,
सृष्टि के समस्त संकटों को पीस डारिये।।



बिहारी लाल सोनी 'अनुज'

अतीत का गौरव

आज लोग
सहमे-सहमे, डरे हुए हैं।
सच को सच
बोलने के स्थान पर
झूठ बोलने वालों की
हाँ में हाँ भरते हैं
क्योंकि झूठ के समर्थन से
उनके क्षणिक/निजी स्वार्थ हल होते हैं
लगता है विचार पंगु हो गये हैं/
चिंतन को दीमक लग गई है/
सोच - व्यक्तिगत जीवन तक सीमित हो
गया है
आर्दश - लुप्त प्राय हो रहे हैं
मर्यादाओं - के बाँध टूट रहे हैं
भावना - महज खिलौना हो गई है
अधिकार - बेशरम के झाड़ की तरह
बढ़ते जा रहे हैं
कर्त्तव्य - असीमित होते जा रहे हैं
सदाचार - मौन होता जा रहा है
भ्रष्टाचार - सीमा लांघ रहा है
नैतिकता - नीलाम हो रही है
आचरण - भ्रष्ट होता जा रहा है

ईमान - रोज बदलने वाली पोषाक हो
गया है
आस्था - दिग्भ्रमित हो गई है
धर्म - सलीब पर चढ़ाया जा रहा है
श्रद्धा - जुगनू बन गई है/ और अंध
श्रद्धा में बदल रही है
विश्वास - विश्वास-घात कर रहा है
आस्था - खोखली होती जा रही है
देशसेवा - की आड़ में निज सेवा हो
रही है
जनसेवा - के बदले छलसेवा हो रही है
शांति - की आड़ में अशांति की
साजिश हो रही है
देशभक्ति - की जगह देशद्रोह निजी
लालचवश पनप रहा है
हत्याएं
(बलात्कार/चोरी/हिंसा/लूटमारी/एक्सी
डेंट) रोजमर्रा की बात हो गई है।
लगता है एक पीढ़ी-सीढ़ी से नीचे
खिसक गई है।
आओ मित्रों एक बार पुनः देश
निर्माण/विकास में जुट जाये/
अपने देश भारतवर्ष को अतीत का फिर
से गौरव दिलवाये।

ई-7/120, अशोका सोसायटी,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल -16, मो. - 83580 92266



1. वेणु स्वर फीका हो लेगा

कितने भी तुम दीप जलाओ
अंधियारा यह कम ना होगा
अंधियारे को गले लगाओ
दीपक शर्मिदा हो लेगा
टांकोगे पलकों में सपने
पूनम का कोई चांद न होगा
सूरज को आँखों में भर लो
चंदा पीला सा हो लेगा
तैर रहोगे सागर पर तुम
दूर किनारा पास न होगा
लहरें आँचल में समेट लो
सागर क्षुद्र-क्षुद्र हो लेगा
महल भरोगे साँसों में तुम
जीवन यह उपवन न होगा
एक अश्रु पीकर ही देखो
सावन खुद लज्जित हो लेगा
संगीत सजाओगे धड़कन में
कोई हिरण पास न होगा
कोलाहल धड़कन में भर लो
वेणु स्वर फीका हो लेगा
मयखानों में जाकर पिओ
कोई प्यासा साथ न होगा
पी लो विष के घूँट जरा दो
प्याला मयखाना हो लेगा।

2. दिवाली पर दीप जलाओ

दिवाली पर दीप जलाओ
देश की अखंडता के
दिवाली पर दीप जलाओ
विविधता में एकता के
दिवाली पर दीप जलाओ
न दिलों के बँटवारे के
दिवाली पर दीप जलाओ
सबसे भाइचारे के
दिवाली पर दीप जलाओ
सत्य के अहिंसा के
दिवाली पर दीप जलाओ
क्षमा के, करुणा के
दिवाली पर दीप जलाओ
प्रेम के, विश्वास के
दिवाली पर दीप जलाओ
प्रेम के, विश्वास के
दिवाली पर दीप जलाओ
सौजन्य के, सौहार्द के
दिवाली पर दीप जलाओ
बेटी, बेटे की समानता के

दिवाली पर दीप जलाओ
कन्या-भ्रूण की रक्षा के
दिवाली पर दीप जलाओ
माँ गंगा की शुद्धता के
दिवाली पर दीप जलाओ
पर्यावरण सुरक्षा के
दिवाली पर दीप जलाओ
गौमाता की वृद्धि के
दिवाली पर दीप जलाओ
आध्यात्मिक अभिवृद्धि के
दिवाली पर दीप जलाओ
सृष्टि में भूत दया के
दिवाली पर दीप जलाओ
सबकी ही दुआ के
दिवाली पर दीप जलाओ
सर्वधर्म समभाव के
दिवाली पर दीप जलाओ
विश्व बंधुत्व भाव के
दिवाली पर दीप जलाओ
संस्कृति के बचाव के
दिवाली पर दीप जलाओ
इक दूजे के सद्भाव के।

- शेगाँव, बुलढाणा (महाराष्ट्र) मो.- 78756 83745



धर्मन्द्र गुप्त

जिन्दगी का क्या है, वो तो
रोज़ ग़म खाती रहेगी

1.

जलन समेटूँ चुभन समेटूँ
कहाँ तलक मैं घुटन समेटूँ

जंगलों की आग मुझमें
जिससे हर पल दह रहा हूँ

अपने सागर से मिलन तक
ये नदी गाती रहेगी

मैं चाहता हूँ कि फैल जाऊँ
वो चाहता है बदन समेटूँ

मानो ना मानो, है तुम पर
सुन तो लो जो कह रहा हूँ

खोल दो इन खिड़कियों को
रोशनी आती रहेगी

ये कुछ ज़ियादा ही बढ़ गया है
यही है बेहतर कि मन समेटूँ

तुम ही आये राह मेरी
मैं तो अपनी रह रहा हूँ

4.
रोज़ मुझको जाँचता है
दर्द मुझको माँजता है

चुनिन्दा फूलों की है तमन्ना
नहीं है ख्वाहिश चमन समेटूँ

वो ही बोले जा रहा है
मैं कहाँ कुछ कह रहा हूँ

हर तरफ़ छाया है कोहरा
सूर्य अब तक लापता है

मिले जहाँ से, जिधर से मुझको
मैं सदविचारों का धन समेटूँ

3.
ख़ुद बहल जाती रहेगी
वेदना गाती रहेगी

आदमी बस आदमी है
कब हुआ वो देवता है

नया है कहने को कुछ नहीं जब
यही है बेहतर सुखन समेटूँ

सोच लो रचना तुम्हारी
बनके क्या थाती रहेगी

नींद ना टूटे किसी की
डरके कोई खाँसता है

2.

बिन कहे सब कह रहा हूँ
मैं नदी - सा बह रहा हूँ

सुर मिले या मिल न पाये
जिन्दगी गाती रहेगी

किस तरह का दोस्त हूँ मैं
मेरा दुश्मन जानता है

एक कथा की भूमिका में
कितने किस्से कह रहा हूँ

तेल चुक जायेगा लेकिन
दीप में बाती रहेगी

सम्पादक : समकालीन स्पंदन
के . 3/10 ए माँ शीतला भवन, गायघाट
वाराणसी - 221001 मो. 8935065229

आत्म-सम्मान

– प्रीति मिश्रा



निशा की आँखों से अविरल टप-टप आंसू बह रहे थे। वह छुप-छुपकर पेड़ों व दीवार की आड़ से अपने पिता की धधकती हुयी चिता को ठगी सी एकटक बस देखे जा रही थी।

उसे वह सबका सब एक-एक कर याद आ रहा था- किस तरह पापा ने प्यार-दुलार से उसकी परवरिश की थी मम्मी व भाई का लाड़ भी उसे खूब मिलता था पापा की तो जान थी पिता रविकिशन बहुत ही स्वाभिमानी-कर्तव्यनिष्ठ व्यवसायी थे खुशहाल पारिवारिक-समाजिक जीवन था उनका।

निशा कालेज में पढ़ाई कर रही थी तभी साहिल ने उससे नजदीकियां कुछ जादा ही बढ़ा लीं। निकाह की बात पर निशा तैयार नहीं हुयी। वह पहले घर वालों को विश्वास में लेना चाहती थी, निशा समझती थी कि उसका परिवार इस अधर्मी संबंध के

लिये कभी भी तैयार नहीं हो सकता पर लव-जिहादी साहिल ने उसे इतना समय भी नहीं दिया। साहिल के समझाने पर कि एकबार निकाह हो जायेगा तो तुम्हारे पापा थोड़ा नाराज हो कर हमें अपना लेंगे तुमसे प्यार वो इतना करते हैं, सब कुछ ठीक हो जायेगा कह कर निशा को बहला-फुसला कर निकाह कर लिया।

बेटी के निकाह की बात सुनकर रविकिशन बिस्तर पर पड़ गये उनके संस्कार, बेटी के लिये अभिमान लाड़-प्यार उनकी प्रतिष्ठा सब पल भर में कांच की तरह टूट कर चकनाचूर हो गये। उनका दुःख, उनका था। आत्म-सम्मान बाकी था, बेटी का तिरस्कार कर दिया, उसके लिये घर के सारे दरवाजे सदा के लिये बंद हो गये। निशा साहिल के साथ उसके घर आयी।

यह क्या-

यहां तो सारी दुनिया अलग है उसने कभी लहसुन-प्याज को भी हाथ नहीं लगाया था। पर यहां तो माहौल ही कुछ अलग था न धर्म-न कर्म सारी व्यवस्था ही अलग थी, क्या करती चिड़िया बहेलिए के जाल में फंस चुकी थी। उसे वह सब अपनाना पड़ रहा था, क्योंकि उसके अपनों के सारे दरवाजे बंद हो चुके थे सपनों की दुनिया से बाहर आकर वह विचलित हो गयी थी। कुछ दिन बाद ही पिता के निधन की खबर मिली अपने को रोक नहीं पायी शमशान-घाट में पहुँच कर पापा की लाश को देख रही थी।

पिता की चिता की धधकती ज्वाला अब शांत हो चुकी थी। कांधा देने वाले अपने, अब लौटने लगे थे।

निशा के कदम भी बढ़ गये एक अनजान दिशा में जो न अपने घर की तरफ थे न शौहर के घर की ओर.....।

रायपुर (छत्तीसगढ़) ●

बताते-बताते

- राम नगीना मौर्य



चाहे जितनी भी देर हो जाये शाम को घर पहुँचने पर, बताती जरूर है मुझे सब-कुछ...मेरी बिटिया। जो कुछ भी हुआ हो दिन-भर उसके स्कूल में, मुझे घर में घुसते देखा नहीं कि बस्स...शुरू हो जाती है नॉनस्टॉप, बिना किसी ओर-छोर के या आगा-पीछी देखे-सुने, सोचे-समझे। पूरा दिन कैसा बीता। बताने लगती है अक्षरशः...शब्दशः...वाक्यशः सुबह से शाम तलक के पूरे दिन का अपना लेखा-जोखा।

अमूमन, सिर्फ “एक बात बताऊँ पापा?”...कहने से ही होती है, उसके बातों की भेद-अभेद भरी शुरूआत...? पर, “अच्छा? अच्छा?” कहते हुँकारी भरने भर की देर है, फिर तो जैसे खुल जाता है उसकी बात-बतकहियों का पिंटारा ही। जब-तक कि पत्नी टोक न दे उसे ये कहते कि “पिता श्री अभी घर में पाँव रक्खे नहीं कि बस्स शुरू हो गयीं दादी-अम्मा अपनी स्टॉयल में...अपने सुर-ताल-लय और धुन में। अरे बू..ढ़ा!...हाथ-मुँह तो धो लेने दो। कपड़े-सपड़े तो चेन्ज कर लेने दो। चाय-वाय तो पी लेने दो इन्हें। फिर सुनाना अपनी बेसिर-पैर की बकवादियां। लाग-लपेट सी अपनी लन्तरानियां।”

आड़ी-तिरछी भाव-भंगिमा बनाते तो कभी छत्तीस-कोंण का मुँह बिचकाते-बिगाड़ते, उसकी ढेर सारी बातें सुनते, कभी-कभी तो लगता है जैसे, अपने दोस्तों, क्लॉस-टीचर, कड़क मिजाज पी.टी. सर और रिक्शेवाले भइय्या जी की बातों के अलावा, उसकी कोई दुनिया ही नहीं है। इन्हें लेकर, इनके बारे में तोतली जुबान में चहकते- बतियाते, बीच- बीच में उछलते- कूदते, तो कभी ता-थैय्या सा थिरकते, साथ-ही-साथ उन लोगों की मिमिक्री भी करते-चलते, उसके पास बताने, सुनाने को इतना कुछ होता है कि अन्दर आकर जूते- मोजे उतारने, कपड़े बदलने, हाथ- मुँह धोने, चाभियों का गुच्छा-चश्मा-पर्स-बैग-पेन, कप-बोर्ड में रखने आदि उपक्रम में इत्मिनान से, संयत हो...पूरम्पूर उसकी बातें सुन ही नहीं पाता।

जैसे थकती ही नहीं। उतने समय मेरे इर्द-गिर्द चक्कर लगाते-बतियाते,

अगड़म- बगड़म- सगड़म...पता नहीं क्या-क्या...बेसिर- पैर की, बेतरतीब...तो कभी सिलसिलेवार... यके-बाद-दीगरे, इनकी-उनकी बातें, रूकने का नाम ही नहीं लेती। जैसे खत्म ही नहीं होती उसकी बातें। बतानी-सुनानी होती हैं उसे...एकबारगी ही जाने कितने ही लोगों के बारे में, कितनी ही बातें।

और-तो-और...स्कूल में अपना टिफिन, पूरा फिनिश न करने, जूते-मोजे-टाई-बेल्ट-यूनिफॉर्म-बॉटल-बैग आदि स्कूल से लौट कर, घर में कहीं भी उतारते-झटकते-फेंकते टी.वी. पर अपना मन-पसन्द कार्टून देखने के लिए रोकने, लापरवाही से खाना खाने पर टोकने को लेकर, अपनी मम्मी की दिन-भर की डॉट-फटकार-शिकायतें आदि बातें भी बाजदफे उसकी बतकहियों में समाहित रहती हैं।

यहाँ तक कि...किचन में उसकी और मेरी पसन्द का आज क्या-क्या बना है, सब्जी, सूखी-भुजिया ही है, या कोई रसेदार सब्जी भी बनी है? चावल बना है, या आज भी सिर्फरोटी-तरकारी ही खानी होगी? ऐसे न जाने कितने ही तरह की बातें। छोटी-से-छोटी बात को विस्तार से बताने का उपक्रम वो अपने बात-वृत्तान्त में शामिल कर ही लेती है।

गौरतलब ये भी कि...ऐसे में उसकी मम्मी अगर कुछ कहना चाहें अपनी सफाई में। जोड़ना चाहें कुछ अपनी तरफसे...बात समझाने के तर्ई, तो सुन कर-देख कर बिटिया का अन्दाज-ए-बयाँ या शायद चेहरे पर आये मेरे भावों को पढ़ते, मेरे इरादे भाँपते, उस पर बनावटी गुस्सा दिखाते, आँखें तरेरते, “ई बू..ढ़ा अभी से लगाना-बुझाना सीख रही हैं।” या सिर्फ “अच्छा ना..नी।” कहते...बस्स चुप्प लगा जाती हैं।

फिर भी...कभी-कभार, टोका-टाकी हल्की-फुल्की तकरार तो माँ-बेटी में हो ही जाती है। एक-दूसरे को आँखें दिखाते, भाँहें तरेरते तो कभी लम्बी जीभ निकालते-चिढ़ाते, खासा नाटकीय दृश्य उपस्थित हो

जाता है। वाबजूद अपनी मम्मी के रोकने-टोकने के, उन्हें बीच में ही रोकते-टोकते, वो पूरे दिन का ब्यौरा प्रस्तुत करके ही दम लेती है।

जाहिर है...ऐसे में फिर...हम पति-पत्नी बस्स...मुस्कियाते, उसे देखते-सुनते भर ही रह जाते हैं। देख कर उसका मोहक मुस्कान बिखेरता चेहरा। सुन कर उसकी रस-मिश्रित बातें। बाल-सुलभ...मासूमियत भरी उसकी अदाएं। दिन-भर के कामों-उलझनों आदि से उपजी थकावट। गुस्से के पल। हताशा-निराशा-उदासी-ऊबन-उकताहट या किसी बात पर उपजी झल्लाहट-खिसियाहट के पल, पल-भर में कब काफूर हो जाते हैं, काम-काज की थकान, कब उड़न-छू हो जाते हैं...पता ही नहीं चलता।

रोजमर्रा की आपाधापी। दुनिया-जहान की उथल-पुथल। तमाम आकुलताओं-व्याकुलताओं से आधा-तिहा या कभी पूरम्पूर निबटने के अनन्तर, वापस घर लौटते, बिटिया की दुनिया के बारे में जानना, उसकी ढेरों बातें सुनना, उससे बतियाना, अन्तर्मन को कहीं...गहरे सुकून देता है।

वाग्विदग्धतापूर्ण भाषा में कहूँ तो...लगता है जैसे, जेठ की तपती दुपहरिया में अमराइयों तले...मन्द-मन्द चल रही पुरवा हवा संग आँखें मूँदे, खटिया पर अधलेटे, निश्चिन्त से सुस्ता रहे हों। मैं तो उसकी सारी बात-बतकहियाँ, यदा-कदा अपनी डिमाई आकार डॉयरी में लिपिबद्ध भी करता चलता हूँ।

उसके सवाल बाल-सुलभ ही हों जरूरी नहीं। बाजमाँके तो बेबाक कर देने वाले, उसके सवालियों के जवाब देते, हम अगले-बगले भी झाँकने लगते हैं। बिटिया की बाल-सुलभ स्वाभाविक बातें सुनते कभी खिन्नता महसूस नहीं हुई। उससे जुड़े खट्टे-मीठे अनुभवों को अपनी डॉयरी में लिखना बेहद सुखद और सुकून-दायक रहा है। दुविधा तो तब होती है, जब वो कुछ नहीं बोलती-बतियाती। उसके अनुभव, उसकी बातों को

समझना दुरुह रहा हो, असाध्य रहा हो ऐसा भी नहीं। बातें तो उसकी बिलकुल सीधी-सादी होती हैं, बिना किसी लाग-लपेट के। मन-गढ़न्त या गुरू-गम्भीर तो कतई नहीं...जो अविश्वसनीय या समझ से परे हों। बल्कि दिल की अतल गहराइयों में सीधे उतरती जाती हैं।

उस रोज शाम...दफ्तर से लौटने में यद्यपि रात ज्यादा हो गयी थी। उम्मीद के विपरीत डोरबेल की आवाज पर द्वार, बिटिया ने खोला। ध्यान दिया कि...रोज की तरह उसे व्योरे बतियाने में कोई रूचि नहीं थी। आशंका ये भी हुई कि हो-न-हो...सोने का वक्त होने के कारण ऐसा हो...? पर चेहरे पर उसके उदासी की आड़ी-तिरछी रेखाओं के साफ-साफ..आते-जाते दिखने से, किसी अनजान आशंका को भाँपते, मेरे ये पूछने पर कि...“हमारी बिटिया-रानी का मुँह आज इस कदर उतरा क्यों है, अभी तक सोई क्यों नहीं, कल स्कूल नहीं जाना है क्या?”

मेरी इन पृच्छाओं को धता बताते, आशंकाओं को निर्मूल करते, मेरे सवालियों को लगभग अनसुना करते, उन्हें सिर से परे ढकेलते, लिये चेहरे पर वही मासूमियत, फौरन से पेशतर...जैसे फट पड़ी हो। बिना ये जाने-सोचे-समझे-बूझे कि इतनी रात गये, उसकी बातें सुनने में मेरी रूचि होगी भी या नहीं...?

“एक बात बताऊँ पापा?”

“हाँ! बताओ?” आदतन मैंने भी जिज्ञासा व्यक्त की।

“परसों से मेरी पक्की सहेली रागिनी, स्कूल नहीं आयेगी। उसके पापा ने अपना मकान बदल लिया है, और स्कूल से उसका नाम कटवा कर दूसरे स्कूल में लिखवा भी दिया है। कल के बाद वो लोग कहीं और रहने चले जायेंगे।”

“अच्छा?”

“एक बात और बताऊँ पापा?”

“हाँ! बताओ?” मैं भी बात की तह में जाना

चाहता था।

“हम दोनों सहेलियाँ आगे वाली बेंच पर साथ-साथ ही बैठतीं थीं। हम दोनों एक ही कलर का हेयर-बैण्ड लगाते थे। हम आपस में अपना टिफिन भी शेयर करते थे। अब मैं अपना टिफिन किसके साथ शेयर करूँगी?”

“हाँ...ये बात तो काबिलेगौर है।” मैंने भी आशंका जताने का अभिनय सा किया।

“एक और भी बात बताऊँ पापा?”

“हाँ! बताओ?” अब मुझे उसकी बातों में दिलचस्पी बढ़ने लगी थी।

“मेरे पिछले बर्थ-डे पर उसने मुझे एक पेंसिल-बॉक्स गिफ्ट किया था। इस साल उसके बर्थ-डे पर मैंने भी उसे एक कॅलर-बॉक्स गिफ्ट किया था। अब मैं किसे गिफ्ट दूँगी, और किससे गिफ्ट लूँगी? स्कूल में तो मेरी कोई दूसरी पक्की सहेली भी नहीं है?”

उसकी बातें सुन, कलेजा मुँह को आ गया। वाबजूद इस कटु सच्चाई के कि उसकी पक्की सहेली रागिनी परसों से स्कूल नहीं आयेगी, शायद वो इससे हमेंशा-हमेंशा के लिए बिछड़ जायेगी। बिटिया ने भर्राये स्वर ही सही, आगे उसके बारे में खूब सारी बातें की। उसकी पसंदगी-नापसंदगी, उसके खानपान, बात-व्यवहार उसकी आदतों आदि के बारे में विस्तार से बताया।

बातें तो उसने खूब सारी कीं। पता नहीं उनमें क्या-क्या कहा होगा...? ठीक से याद नहीं, या शायद...मैंने ही ध्यान देना उचित नहीं समझा होगा? कारण कि...दिन-भर का थका-हारा, घर में बोझिल कदम रखते, हाव-भाव से मुझे थका-मांदा देखते, रात देर होने के कारण या अपनी बातों में मेरी अरूचि को भाँपते, अन्यमनस्कता का अंदाजा लगाते, सोफे पर बैठे-बैठे बीच-बीच में मेरी...‘हाँ-हूँ-ऊँ-आँ’...सुनते या मेरी आँखों में नींद की बोझिलता महसूस करते, जल्द ही चुप हो गयी...बिटिया भी।

सोफे पर बैठे-बैठे, उसकी बातें सुनते-सुनते उनींदी सी मेरी आँखें कब लग गयीं, मुझे इसका तनिक भी आभास नहीं होने पाया। वो तो पत्नी के...“खाना लग गया है जी, सो गये क्या...?” दो-तीन बार आवाज देने पर, हड़बड़ाते जगने पर ही जान सका कि...उस दिन ढेर सारी बातें, बताते-बताते...बिटिया भी मेरी सो गयी थी, वहीं मेरे बगल में ही सोफे पर, पर कब? ये जान ही नहीं पाया।

कहीं जग न जाये बेवजह ही उसकी सुखद नींद में कोई खलल उत्पन्न न हो। सीने से टिके बिटिया के नन्हें हाथों को आहिस्ता, खुद से परे हटाते, अपने बगल पड़ी चादर, उस पर हल्के ओढ़ाते, गहरी निद्रा में निश्चिन्त सोती उस मासूम के चेहरे को देखते, बार-बार सोचता रहा...‘अपने जिगरी दोस्त से यूँ असमय बिछड़ना, किसी के लिए भी दुःखद अहसास तो है ही, तिस पर इतनी छोटी उम्र में आघातक भी। फिर बचपन के जिगरी दोस्तों, उन संग बिताये गये खट्टे-मीठे पलों, शरारतों, मस्ती, चुहलबाजियों, हँसी-ठठा को भला कभी भूल भी सकता है कोई? समय की शिलापट्ट पर, ऐसी यादें तो धरोहर के मानिन्द होती हैं। जिनकी याद आते ही बनने लगते हैं, यादों के ढेरों श्वेत-श्याम...रंग-बिरंगे से कोलॉज।’

बचपन के दोस्त तो वो अनमोल हीरे से होते हैं, जो न कभी जंग खाते हैं न उनकी धार कुन्द होती है, न उनमें कभी घुन ही लगते हैं। आश्चर्य नहीं...कि कभी तो साथ जीने-मरने की कसमें भी खा लेते हैं। एक तो बिटिया का बाल-मन...तिस पर चेहरे पर उभर आया मर्म भरा उदासीपन। प्रकृतिस्थ नहीं हो पा रहा था।

मन सिहर उठा क्या-कुछ गुजर रही होगी इस पर...? असहायता और बेचारगीभाव लिये उसका मर्माहत उदास चेहरा देखकर, उसकी व्यथा-कथा का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता था। कहाँ तो बच्चों की सीधी-सादी, अनदेखी-अनजानी दुनिया? कहाँ हमारी झंझावात भरी दुनिया? बिटिया के मन की बातें...कुछ समझा, कुछ समझ नहीं पाया।

बहरहाल...मेरे लिए ये खबर कोई खबर नहीं थी, पर खास हो गयी तब, जब देखा बिटिया के चेहरे की रंगत, जो मायने रखती थीं। वाबजूद, रोजमर्रा की मेरी आपाधापियों के बीच। सोचने के क्रम में यहाँ तक सोच गया कि...बिटिया के लिए तो किसी अपने से मिलने-बिछड़ने का ये पहला अवसर है, जो काम आये आगे शायद...उसके आने वाले जीवन में। बढ़ती उम्र के साथ रिश्तों की गर्म-जोशी को जानने में। समय के साथ उनमें उपजी मिठास-खटास आदि को समझने-बूझने में, और हर स्थिति-परिस्थिति...देश-काल-परिवेश में जल्द से जल्द खुद को एडजस्ट कर लेने में। बेशक...संयोग-वियोग में संभलने-संभालने में भी।

जाहिरन तौर...बिटिया की बातों से व्यथित, उस दिन मुझे भी ठीक से खाना नहीं खाया गया। मेरे मन में अन्तर्गुम्फित विचारों का अंदाजा पत्नी को सहज ही हो गया। उन्होंने मेरी व्यथा का अंदाजा लगाते कुछ यूँ सांत्वना दी...,

“बिटिया की बढ़ती उम्र के साथ हमें भी अपनी आदतें, प्राथमिकताएं बदलनी होंगी। उसकी अनुपस्थिति में रहने के लिए खुद को तैयार करना होगा। समय के साथ हमें भी ढलना-चलना होगा। खुद को उस संग, उसी अनुरूप ढालना होगा। साथ ही उसे भी जीवन की कड़वी, परन्तु ठोस सच्चाइयों को स्वीकारना सीखाना होगा। जीवन के सामान्य और जटिल पलों के बीच संतुलन बनाना होगा। जीवन में सिर्फ रंग-बिरंगे पहलुओं से ही नहीं, बाजवक्त स्याह-सुफ़ेद पहलुओं से भी दो-चार होना पड़ता है, उसे बताना, समझाना होगा। ताकि...जीवन में असमय ही आये, आकस्मिक-भावुक-उपहासमय घड़ियों का वो मजबूती से सामना कर सके, सम्यक् समाधान निकाल सके।”

पत्नी ने शायद ठीक ही कहा था, आखिर...अपनों से बिछुड़ने का दर्द, उनसे बेहतर कौन बता सकता है...?

5/348, विराज खण्ड, गोमती नगर,

लखनऊ-226010 (उ.प्र.)मो.09450648701 ●

बेवफाई

- डॉ. प्रज्ञा शारदा



गोपाल को आज भी वो दिन याद है जब उसके पिता अस्पताल में बिस्तर पर लेटे आखिरी सांस ले रहे थे। प्राण मानो निकल ही नहीं रहे थे। सांस उखड़ रही थी। मुँह लाल हो गया था। आँखें जैसे फटने को थी। बहुत तड़प रहा था रामदीन। गोपाल के चाचा ने पूछा, “तेरी जोरू को बुला दूँ? मिलेगा?” तो रामदीन ने सीधे हाथ की उंगली हिलाकर नहीं में संकेत कर करवट बदली। चाचा ने अपनी बात दोहराते हुए रामदीन को सीधा किया तो देखा उसके प्राण निकल चुके थे। उस आखिरी घड़ी में भी रामदीन अपनी पत्नी से मिलना नहीं चाहता था। रामदीन की पत्नी किसी और के साथ दस वर्ष पहले दो प्यारे-प्यारे बच्चों को छोड़ चली गई थी। कभी वापस ना आने के लिए। बच्चे तो किसी तरह से संयुक्त परिवार के रहते बड़े हो ही रहे थे कि एक दिन शरीके के ताऊ दीनदयाल खबर लाये कि, “इन बच्चों की माँ को उन्होंने ग्वालियर में देखा है। दीनदयाल अपने दफ्तर के दौरे पर ग्वालियर गए थे। वे बिजली के दफ्तर में काम करते थे। उन्हीं के दफ्तर में अपने शौहर व दो बच्चियों के साथ आई थी। अंग्रेजी बोल रही थी। लगता है खूब पढ़ लिख गई है।” दीनदयाल ने तंज भरे लहजे में कहा। किसी ने भी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। जैसे अनसुना कर दिया हो। कोई सुनना ही नहीं चाहता हो। गोपाल भी इतना बड़ा तो हो ही चुका था कि उसे बात समझ में आने लगी थी। गोपाल के पिता घर के भीतर चले गए। जब तक दीनदयाल अपने दौरे की कहानी समाप्त कर वापिस चला नहीं गया वह बाहर नहीं आए। आकर करते भी क्या? यूँ भी पत्नी की बेवफाई के बाद वे बाहर कम ही निकलते थे। घर से दफ्तर व दफ्तर से घर। रास्ते में भी सिर झुकाए रहते। कहीं किसी से बात न करनी पड़ जाए। शायद वे लोगों की नजरों में उठ रहे सवालों के जवाबों से बच रहे थे। इसी तरह दिन और वर्ष गुजरते गए। रामदीन अपनी पत्नी से बहुत प्यार करते थे वह उसे भूल नहीं पा रहे थे। सारा दिन अपने कमरे में गुमगीन से बैठे रहते। उन्होंने शराब पीना आरंभ कर दिया। उनकी तबियत भी खराब रहने लगी। गोपाल ने एक दिन कहा भी, “पापा, इतनी मत पिया करो। तुम्हारी तबियत खराब हो जाती है।” “क्या करूँ बेटा, तुम्हारी माँ को भूल

नहीं पा रहा हूँ।” उन्होंने रुआंसे से होकर कहा।

शुरू-शुरू में रामदीन दफ्तर से आकर अपने कमरे में बैठकर रात को ही पीते थे। पर ज्यों-ज्यों समय बीता गया वे अधिक पीना शुरू हो गए थे। और अब उन्होंने दिन में ही पीना शुरू कर दिया था। फिर दफ्तर जाने की हालत नहीं रहती थी। सारा दिन नशे में धुत रहते। शायद पत्नी का गम भुलाने में नाकाम हो रहे थे। नशा भी उन्हें पत्नी को भुलाने में मदद नहीं कर रहा था। इसी हालात के चलते धीरे धीरे रामदीन ने बिस्तर पकड़ लिया। अब वह ना दफ्तर जाते ना कुछ खाते पीते। चाचा उनकी बहुत देखभाल करते उन्हें समझाते भी। चाची, दोनों बहन-भाई व पूरे परिवार की देखभाल करती। उन्हें पूरे घर का काम अकेले ही करना पड़ता। एक दिन रामदीन की हालत इतनी बिगड़ गई उन्हें खून की उल्टियां होने लगी। जल्दी-जल्दी उन्हें अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टर ने बताया कि रामदीन का का लिवर पूरी तरह से खराब हो चुका है और अब इनका अंतिम समय बहुत करीब है। सभी यह सुनकर सदमे में आ गए। लगा जैसे चारों ओर अंधेरा छा गया हो। किसी को कुछ भी नहीं सूझ रहा था। चाची ने गोपाल और मुन्नी को अपने से चिपका रखा था मानो अपने से दूर ना जाने देना चाहती हो। रामदीन शांत और खामोश थे। उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा। किसी से न उन्हें कोई गिला था न ही कोई शिकवा ना ही कोई शिकायत। वे अपनी दशा का जिम्मेदार स्वयं को मानते थे तथा इसे अपनी किस्मत मान पर अपना चुके थे।

आज सुबह से ही रामदीन की हालत बहुत खराब थी। उन्हें याद आ रहा था सत्रह वर्ष पहले का दिन जब वह अपनी सुंदर सी दुल्हन को ब्याह कर लाए थे। कितने खुश थे घर में सब। उनकी दुल्हन जब पैरों में पाजेब डालकर रुनझुन रुनझुन करती घर में घूमती तो वे मंत्रमुग्ध से हो जाते। पूरे गांव में उनकी दुल्हन की

सुंदरता के चर्चे हो रहे थे। गांव में आज तक इतनी सुंदर दुल्हन किसी की नहीं आई थी। यूं तो रामदीन का व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं था। ऊँचा कद, गोरा रंग, तीखे नैन नक्श। दफ्तर जाने के लिए जब सुबह तैयार होते और सफेद कुर्ता, सलवार, पंजाबी जूती, तुर्रें वाली पगड़ी पहनकर घर से निकलते तो लोग मुड़-मुड़कर देखते। साल भर बाद घर में एक प्यारी सी गुड़िया ने जन्म लिया और उसके दो वर्ष पश्चात एक बेटे ने। रामदीन जैसे निहाल हो गया था। उसका परिवार पूरा हो गया था। उसके पांव जमीन पर नहीं टिकते थे। पर ये खुशियां अधिक समय नहीं चलीं। बेटे की पैदाइश के 6 महीने पश्चात् ही रामदीन को अपनी दुल्हन की ओर से बेरुखी का आभास सा होने लगा था। उसने तो कई बार टोका भी पर समय जैसे हाथ से फिसलता गया और वो घड़ी आ गई जिसने रामदीन को इन हालातों में लाकर खड़ा कर दिया कि वह किसी से नजरें मिलाने के काबिल नहीं रहे।

अचानक से रामदीन की सांस उखड़ने लगी। वह जोर-जोर से खाँसने लगे। आंख लाल हो गई। दम घुट रहा था उनका। बस प्राण ही नहीं निकल रहे थे तभी चाचा ने रामदीन को उनकी पत्नी से मिलने की इच्छा के बारे में पूछा। रामदीन ने ना में उंगली हिलाई और करवट बदल कर प्राण त्याग दिए।

गोपाल के पास अपने पिता की कोई तस्वीर नहीं थी। पर आज भी उसके दिलो-दिमाग में अपने पिता के चेहरे की धुंधली सी तस्वीर है। उदास, शांत। उसे याद आती है वो बेवफाई, जो उसकी मां ने उसके पिता के साथ की थी। वह कुछ समझ नहीं पाता था और सोचता ना जाने उस वक्त क्या हालात रहे होंगे क्योंकि वह तो उमर में छोटा था। इसी सोच ने उसके मां के प्रति सम्मान को कम नहीं होने दिया। ये बड़ी बात है।

401/43 ए चंडीगढ़, मो. - 9815001468

युगनिर्माता : महर्षि अरविंद घोष

- प्रो. किशोरीलाल व्यास नीलकंठ

जैसे पशुता निखरते और सुसंस्कृत होते-होते मानवता में पहुँची है, उसी प्रकार और भी सुसंस्कृत होने और सूक्ष्म सिद्धियों द्वारा उसे मानव से ऊपर की चेतना के समन्वय को पाना है। यह एक सतत् विकासगत चढ़ाई है जिसे पूर्ण समर्पण-द्वारा रूपांतरण की भूमिका के रूप में क्रमशः प्राप्त किया जा सकता है...



मानव जाति का स्वर्णिम भविष्य उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह न चाहेगा तब भी यह रूपांतरण होगा ही... पाशविक वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण होगा ही... पर मनुष्य प्रयत्न द्वारा इस प्रक्रिया को शीघ्र ही प्रतिफलित कर सकता है... अभीप्सा और समर्पण उसके सोपान हैं...

श्री अरविंद घोष, बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण विद्वान्, कवि, महायोगी, मौलिक चिंतक, तत्ववेत्ता व भविष्य दृष्टा थे। श्री अरविंद एकमात्र ऐसे विद्वान् थे जिन्होंने पश्चिम की महान कृतियों को मूल में ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी, फ्रेंच में पढ़ा था तो दूसरी ओर भारत के समग्र वाङ्मय का मूलतः संस्कृत में अवगाहन किया था। उन्होंने वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण, महाभारत आदि आर्ष ग्रंथों का गहन अध्ययन किया था। पूर्व और पश्चिम के अनार्बाह्य का, सामर्थ्यों व न्यूनताओं का, ऐसा समर्थ जानकारी विश्व में संभवतः कोई चिंतक नहीं हुआ। दूसरे, पश्चिमी रंग ढंग में अपने जीवन के आरंभिक वर्ष बिताने के कारण पाश्चात्य जीवन विधान व चिंतन-मनन से वे प्रत्यक्षतः परिचित थे। भारतीय संस्कारों से तो वे जन्मतः आबद्ध थे। इसी कारण पूर्व और पश्चिम का ऐसा वैचारिक-तात्त्विक समन्वय ऐसे दूसरे किसी मनीषी में नहीं मिलता। बचपन से ही भारत से दूर रहने के कारण अरविंद पर परम्परागत, आचारबद्ध, रूढ़िग्रस्त हिन्दूधर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। धर्माचारों व आडम्बरों से वे दूर रहे। प्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक रोम्या रोलां के अनुसार - “श्री अरविंद भावी विचारकों में अग्रणी थे तथा एशिया एवं यूरोप की प्रतिभा का उनमें समन्वय था। विश्व के चिंतनशील मनीषियों में, जिन्होंने रचनात्मक ऊर्जा की

उपलब्धि की थी, वे अंतिम महापुरुष थे। वे पूर्व और पश्चिम की समन्वय जीवनी-शक्ति तथा ज्योति के अप्रतिम प्रकाशस्तंभ थे। वे भावी मानवीय विज्ञान के स्वप्नदृष्ट थे।” महर्षि अरविंद ने पश्चिम के विज्ञान और भारत के अध्यात्म को एक-दूसरे का विरोधी न मानकर एक-दूजे का पूरक माना। जहाँ वैज्ञानिक संसाधन व उपकरण मानव जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की सहज आपूर्ति कर, विश्व मानव समूह को एक-दूसरे के सन्निकट लाता है, वहीं अध्यात्म मनुष्य की नैतिक व आन्तरिक आवश्यकता की आपूर्ति कर, उन पाशविक वृत्तियों का सतत् परिष्कार कर, उसे सभ्य, सुसंस्कृत व उदात्त बनाता है। मनुष्य के सर्वाङ्गीण, व सम्पूर्ण विकास के लिए दोनों का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। महर्षि के लिए अरविंद का ‘पूर्ण’ या ‘संश्लिष्ट योग’ इस उपयोग की भूमिका प्रस्तुत करता है।”

विज्ञान उपभोग के अमित संसाधनों की सर्जना करने में तो सक्षम है भोगवृत्ति के अतिरेक पर अंकुश लगाना, मनुष्य को पशु स्तर से ऊपर उठाना उसके बस में नहीं। संसाधनों की भरमार ‘उपभोक्ता-संस्कृति’ को जन्म देती जिसके द्वारा, अनियंत्रित भोगवृत्ति, गलाकाट प्रतियोगिता, शोषण, उत्पीड़न अंततः युद्धों की सर्जना होती है। समाज में विषमता और असंतोष तथा तद्द्वार। हिंसा का प्रसार होता है। मनुष्य सब कुछ पा जाने की होड़ में सारे मानवीय मूल्यों और सरोकारों को रौंदता चला जाता है। उसके लिए मनुष्य-मनुष्य नहीं, एक पशु बन जाता है। ऐसे में पाशविक वृत्तियों पर अंकुश लगाने वाले अध्यात्म आवश्यकता होती है। महर्षि अरविंद ने पूर्व और पश्चिम के इसी समन्वय का स्वप्न देखा। मानव की सद्वृत्तियों के सहज विकास तथा साधना द्वारा ‘दिव्य चेतना’ को व्यक्तियों के भीतर उतार कर, जीवन को अधिक सुन्दर, सार्थक व शांतिमय बनाना ही अरविंद का अभिप्रेत था। गाँधी ने इस धरती सद्वृत्तियों के

विकास द्वारा स्वर्ग बनाने का स्वप्न देखा तो महर्षि अरविंद स्वर्गिक चेतना को धरा पर उतार कर मानव जीवन के समग्र रूपांतरण का मार्ग प्रशस्त किया। अपने पूर्व की दार्शनिक प्रणालियों यथा मार्क्सवाद आदि की न्यूनताओं को पाटकर, अरविंद ने मानव जाति के विकास की एक सर्वांगपूर्ण रूपरेखा प्रस्तुत की। विश्व-बंधुत्व तथा विश्व-शांति के यही भाव बुनियाद होंगे। प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन के ‘विकासवाद’ को स्वीकार करते हुए, महर्षि अरविंद ने विकास के सतत् कार्यरत होने तथा मानवीय चेतना के विकास के नवीन सोपानों के आरोहण की बात की।

हेकल, डार्विन आदि वैज्ञानिकों ने जल में से जीवन की उत्पत्ति स्वीकार करते हुए पहले एक कोषीय (Uni Cellular) जीवों की उत्पत्ति तथा क्रमशः बहुकोषीय जीवों की उत्पत्ति की बात प्रयोगों द्वारा सिद्ध की। क्रमशः वनस्पतियों तथा छोटे जीव-जन्तुओं का विकास हुआ तत्पश्चात् करोड़ों वर्षों की अवधि में क्रमशः बड़े पशु-पक्षियों का विकास हुआ। शरीर के विभिन्न अंगों का विकास प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप हुआ। जड़ से चेतन निर्मित हुआ। बड़े पशुओं तक आते-आते बुद्धि और मन का विकास हुआ। जीवन एक सतत् विकासशील प्रक्रिया है जिसका लक्ष्य है। पूर्णता: प्रकृति में विकास की यह प्रक्रिया स्वयं चलती रहती है। प्राणियों के शरीर में जिन अंगों की अधिक आवश्यकता होती है, उन अंगों का सतत् परिमार्जन चलता रहता है, जिन अंगों की उपादेयता समाप्त हो जाती है वे व्यर्थ के अंग (Vestigial Organs) बन जाते हैं; और क्रमशः लुप्त हो जाते हैं! जो पशु-पक्षी अपने जिस अंग का अधिकाधिक उपयोग करता है, वह मजबूत बनता जाता है। डार्विन ने इस प्रक्रिया का आधार जीवन के लिए संघर्ष (Struggle for existence) तथा सक्षम के जीवित रहने (Survival of the fittest)

के सिद्धान्तों को माना जो उनकी मौलिक खोज थी। डार्विन के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया सहज रूप से चलती रहती है जिसमें चेतना का कोई दखल नहीं। डार्विन की इस खोज ने परम्परावादी ईसाई मान्यता-कि ईश्वर ने सात दिनों में जगत् की सृष्टि की-पर करारी चोट की। परिणामतः भगवान द्वारा सृष्टि और प्राणियों की उत्पत्ति वाले सेमेतिक धर्म की मान्याएँ रेत की दीवार की तरह ध्वस्त हो गई। विक्टोरियन युग का यूरोपीय बुद्धिजीवी पशोपेश में पड़ गया कि सत्य क्या है? विज्ञान की ठोस तर्कबद्ध-चोट ने धर्म की कल्पित मान्यताओं को धरासाई कर दिया। विज्ञान और धर्म के इस द्वन्द्व में अंधश्रद्धा पर टिका धर्म बुरी तरह ध्वस्त हुआ पादरियों की सेना बनी, और डार्विन पर चोटों की गई पर डार्विन की खोज वैज्ञानिक परीक्षणों पर आधारित थी-जिसके प्रमाण स्वयं सिद्ध थे। अतः तत्कालीन बुद्धिजीवी विज्ञान और धर्म के द्वन्द्व से बुरी तरह ग्रस्त रहे। विक्टोरियन युग के महान चिंतक, शिक्षा-शास्त्र व कवि-लेखक मेथ्यू अर्नाल्ड ने अपनी एक कविता में इस द्वन्द्व को व्यक्त करते हुए लिखा है -

I am wandering between two world's, one is already dead. And another is powerless to be born.

अर्थात् “मैं दो दुनियाओं के बीच झूल रहा हूँ। एक पूर्णतः मृत हो चुकी है (परम्परागत धर्म) और दूसरी दुनिया (विज्ञान की) अभी तक जन्म लेने में अक्षम है।” ऐसे में, उस युग के बुद्धिजीवी की आस्थाहीनता खुलकर सामने आई।

वस्तुतः उस युग के सभी जागरुक बुद्धिजीवियों की यही मानसिक स्थिति थी! अर्नाल्ड अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे जिनकी वाणी में युग बोलता है।

पश्चिम का ज्ञान-विज्ञान और दर्शन भी

विज्ञान द्वारा संचालित होने लगा। डार्विन और मार्क्स-दोनों ने मानव के विकास में चेतना के दखल को अस्वीकार किया।

पाश्चात्य चिंतन और जीवन-प्रणाली का निर्माण बाह्य-जगत् को समक्ष रखकर हुआ। पश्चिमी मनीषियों का सारा पुरुषार्थ प्रकृति के रहस्यों को जानने, उनके उपयोग के रास्ते खोजने तथा भौतिक संसाधनों के जुटाने में लगा। पश्चिमी दर्शन भी विज्ञान के मार्ग पर चलकर, मानव की बाह्य आवश्यकताओं की आपूर्ति की चिंता में डूब गया। परिणामतः जीवन में भौतिक समृद्धि का तो पर्याप्त विकास हुआ, पर भीतर से आदमी खोखला होता गया। प्रसिद्ध अंग्रेज कवि टी. एस. इलियट के दो काव्य ग्रंथ ‘द वेस्ट लैंड’ तथा ‘द हॉलोमेन’ इसी बात का द्योतन करते हैं। इस प्रवृत्ति की परिणति दो भीषण विश्व-युद्धों में हुई।

भारतीय चिंतन प्रणाली तथा जीवन-विधान ने मनुष्य को आन्तरिक पुष्टि प्रदान की। यही कारण है कि इतिहास के एक हजार वर्षों के अमानुषिक अत्याचारों के बावजूद हमारे जन सामान्य ने कभी न हार मानी न पलायन किया। आन्तरिक चेतना के तेज ने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी भीतर का प्रकाश बनाये रखा। हर सदी में अनेकानेक चिंतक व संतों ने जन्म लेकर, जन मानस को सद्वृत्तियों से रससिक्त व सुरक्षित रखा। बाहरी साधनों की निर्भरता न्यूनतम कर दी गई और जन-सामान्य ने अपनी आन्तरिक जिजीविषा को सतत् बनाये रखा। भारतीय दर्शन मात्र बौद्धिक विचार-विमर्श का विषय न होकर, निम्न से निम्न स्तर के, अशिक्षित जन समुदाय में भी व्याप्त हो गया और जन सामान्य का मार्गदर्शन करता रहा। भारतीय दर्शन-बौद्धिक चर्चा का विषय मात्र न रह कर, सक्रिय जीवन-दर्शन बना। जन-जीवन का यह एक प्रेरक-संचालक तत्व बना। महर्षि अरविन्द ने भारत की इस आन्तरिक शक्ति को पहचाना

तथा भीतर की चेतना के विकास, और उदात्तीकरण की बात की। पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित विकास को शरीर तक सीमित न कर, उसे मन तथा चेतना के विकास तक ले आये। इस विकास को प्रकृति की सहज प्रक्रिया तक सीमित न कर, इसके विकास में मानव के सायास प्रयत्न को महत्वपूर्ण माना। यही उनकी मौलिक देन है।

मनुष्य अपनी चेतना के विस्तार व विकास के मार्ग को स्वयं प्रशस्त कर सकता है तथा प्रकृति जिसके विकास में दीर्घ कालावधि लगा सकती है, उसे अपने प्रयासों द्वारा त्वरित घटित कर सकता है। सृष्टि में व्याप्त दिव्य चेतना को अपने भीतर उतार सकता है तथा स्वयं अपना तथा अपने परिवेश का 'रूपांतरण' कर सकता है। मानवीय चेतना के विकास का सायास प्रयास ही अरविंद दर्शन है।

प्रकृति के मूलतः तीन तत्त्व हैं—जड़ पदार्थ, जीवन (प्राण) और मन। वर्तमान ज्ञान-विज्ञान ने अपनी बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण जड़ पदार्थ को ही प्रधानता दी—उसी को समझने तथा पाने में वह लग गया, मन को वह किंचित् समझ पाया, पर चेतना को तो उसने नकार ही दिया।

ऐसे में भौतिक तथा चैतन्य का—विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय अनिवार्य हो गया है। ... योग द्वारा मानव आत्म-साक्षात्कार कर अपनी आंतरिक सर्जनशील शक्ति का विकास कर सकता है जो भौतिक सभ्यता के रूपांतरण के लिए आवश्यक है।

मानव व्यक्तित्व निम्न अंगों से विनिर्मित होता है—स्थूल शरीर, प्राण, मन, जीवात्मा और चेतना। चेतना के पुनः निम्न स्तर है सचेतन, अवचेतन और अचेतन। पश्चिमी मनोविज्ञान ने इस क्षेत्र में पर्याप्त शोधकार्य किया है। प्राणियों की सत्ता के आठ स्तर हैं जड़, प्राण, मन, अंतरात्मा, (चैत्य पुरुष), अतिमानस, आनंद, चित्, और

सत्। वृक्षों-पादपों में प्राण सत्ता सुषुप्ति में होती है।

पशु की सत्ता प्राणमय शरीर है। उसमें मन आरंभिक अवस्था में होता है।

मनुष्य के विकास क्रम में 'मन' उच्चतम स्थिति में आया है जिसमें अंतरात्मा का प्रादुर्भाव होगा।

अंतरात्मीकरण के बाद आध्यात्मीकरण की अवस्था आएगी और अंततः 'अतिमानसीकरण' की। इस प्रकार मानव जाति का विकास क्रम निसर्गतः होगा ही। पर यदि मनुष्य सचेतन सक्रिय रूप से विकास प्रक्रिया में भाग ले तो विकास के साथ-साथ समष्टिगत विकास भी प्रतिफलित होता जाएगा।

मानव जाति के इस प्रकार के सायास प्रयत्न से विषमताजन्य अशांति भरे जगत् में शीघ्र ही आनंदमय दिव्य जीवन का शुभारंभ होगा, तथा सुख, शांति समृद्धि और सौन्दर्य की वृद्धि होगी। परम चैतन्य सत्ता मनुष्यों के अन्तर्मन का परिष्कार कर, उसकी विकृतियों को दूर कर, उसे उदात्त भूमि पर ले जाएगी। मानव प्रकृति में परिवर्तन 'अतिचेतन' के अभीप्सा द्वारा चरितार्थ करने से आता है। अभीप्सा का अर्थ है तीव्र इच्छा-विकसित होने, उदात्त बनने और दिव्य चेतना की प्राप्ति की तीव्रतर इच्छा शक्ति। इस प्रक्रिया द्वारा मानवीय व्यक्तित्व का सहज सात्विक रूपांतरण होता है।

महर्षि अरविंद ने अपने ग्रंथों—योग समन्वय (synthesis of yoga) 'दिव्य जीवन' The Life Divine तथा 'सावित्री' महाकाव्य आदि में इन विचारों को व्यक्त किया है।

महर्षि अरविंद का चिंतन मात्र बौद्धिक नहीं, प्रत्युत साधनात्मक अनुभूतिजन्य है। सन् 1910 से अपने देहांत सन् 1950 तक अरविंद सतत् साधनारत रहे। उनकी साधना और चिंतन ये दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रही। 24 नवम्बर 1926 का दिन महर्षि अरविंद के जीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण दिवस था। इस दिन

भागवती चेतना की शक्ति इस जड़ पृथ्वी पर अवतरित हुई। अरविंद के शब्दों में – “24 नवम्बर को श्रीकृष्ण का पृथ्वी पर अवतरण था। श्रीकृष्ण आनंदमय है, दिव्य है। वे अधिमानस द्वारा विकास और आनंद का मार्ग प्रशस्त करते हैं।” मनुष्य के विकास का क्रम सतत् जारी है। इस क्रम में पहले देह की चेतना, फिर प्राण की चेतना और फिर मन की चेतना विकसित हुई। अब मानस-चेतना के विकसित होकर मनुष्य के अतिमानस” चेतना में पहुँचने का समय आ गया है। विश्व हित के लिए इस कार्य का शुभारंभ हो चुका है।

अरविंद दर्शन का उद्देश्य वैयक्तिक ‘मोक्ष-प्राप्ति’ या मुक्ति नहीं है। यह समग्र विश्व के रूपांतरण का बृहत्तर उपक्रम है।

15 अगस्त 1947 को भारत देश स्वतन्त्र हुआ। अरविंद जी का जन्म भी 15 अगस्त 1872 का ही हुआ था। इसे अरविंद मात्र संयोग नहीं मानते। वे कहते हैं – जिस कर्म को लेकर मैंने अपना जीवन आरंभ किया था। उसको मेरा पथ-प्रदर्शन करने वाली ‘भगवती शक्ति’ ने इस तरह स्वीकार कर लिया है और उस पर अपनी मुहर भी लगा दी है, और यह कार्य पूर्ण रूप से सफल होना आरंभ हो गया है।

रचनाकारों एवं संस्थाओं से निवेदन

- ✍ रचनाएँ मौलिक एवं अप्रकाशित ही प्रेषित करें।
- ✍ रचनाएँ ‘साहित्य-समय’ के लिए ईमेल – gopeshvajpayee@gmail.com पर चान्क्या फोंट में टंकित कराकर वर्ड फाइल में मेल या वाट्सएप नं. 9424300234 पर प्रेषित करें, या सुस्पष्ट टंकित हस्त-लिखित रचनाएँ डाक द्वारा संपादकीय पते पर प्रेषित करें।
- ✍ अस्वीकृत रचनाओं की वापसी व्यवस्था नहीं।
- ✍ रचनाओं के साथ परिचय एवं छायाचित्र भी भेजें।
- ✍ पुस्तक समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ अपेक्षित हैं।
- ✍ ‘साहित्य समय’ की प्रति प्राप्त करने हेतु अग्रिम सहयोग राशि अपेक्षित।

महर्षि अरविंद ने कतिपय स्वप्न देखे थे जो निम्न हैं : 1. विश्व पटल पर एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में भारत का उदय 2. एशिया का जागरण तथा एशियन जातियों का पुनरुत्थान 3. विश्व संघ की स्थापना जिसके माध्यम से विकास कार्यों को सहायता प्राप्त होगी। 4. संसार को भारत का आध्यात्मिक मार्गदर्शन।

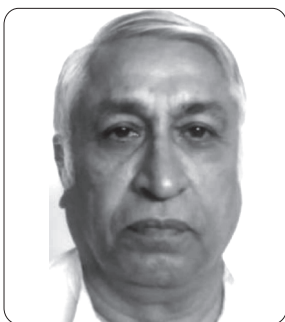
महर्षि ने एक बदले हुए नये विश्व का स्वप्न देखा और उस स्वप्न को साकार करने हेतु अपनी समग्र शक्ति लगा दी। श्री अरविंद उच्चतम भागवत चेतना को धरती पर उतार लाने में सफल हुए। यह चेतना जगत् के रूपांतरण का कार्य करेगी। अरविंद योग में ध्यान, धारणा आदि का जितना स्थान है, कर्म का भी उतना ही महत्व है। वे सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। अपनी साधना पद्धति में श्री अरविंद ने ज्ञान, भक्ति, उपासना और कर्म का ऐसा समन्वय किया कि जगत् की मौलिक तथा आध्यात्मिक उन्नति साथ-साथ चलती रहे। सम्पूर्ण योग-द्वारा मानवता का सर्वांगीण विकास तथा सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की प्राप्ति ही श्री अरविंद का अंतिम अभिप्रेत था। निश्चित ही भावी विश्व इस सम्पूर्ण योग के माध्यम में उदात्त, सुन्दर, सुख-शांति व समृद्धि पूर्ण जीवन का विकास करेगा तथा विश्व-बंधुत्व के भाव को चरितार्थ करेगा।

अनेक साहित्यकारों ने अरविंद दर्शन में आशा की वह आलोक रेखा देखी जिसकी वे जीवन भर खोज करते रहे। हिन्दी के कविवर पंत तथा गुजराती भाषा के कवि सुन्दरम् ऐसे ही साहित्य मनीषी थे। अरविंद दर्शन के परिप्रेक्ष्य में इनका अध्ययन करना सर्जना के नये सोपानों को खोजना है। भाषा की दीवारें गिर रही हैं। सांस्कृतिक-दार्शनिक आदान-प्रदान हेतु भाषा का व्यवधान गलत जा रहा है इस में उदात्त साहित्य सुसंस्कृत समाज के निर्माण में अपनी भूमिका का निर्वाह करे, यह भावी, दिव्य लोक के प्रसार की सही भूमिका होगी।

Flat No. 6, Block No. 3, Kendriya Vihar, Miyapur,
HYDERABAD, 500049. Ph : 040-23044060 ●

अपना घर समरसता का केंद्र बनना चाहिए

- के. श्याम प्रसाद



“सब जातियों के लोगों के प्रति समभाव से व्यवहार करना ही समरसता है।” समझिए कि हमारे घर कोई आये हैं। उनको अपने घर के सामने के कमरे में बिठाकर उनसे बात करते हैं क्या? कुछ लोगों को तो कुर्सी पर बिठाते हैं। कुछ लोगो को जमीन पर बिठाते हैं। कुछ लोगों को तो खड़े होकर बात करना पड़ता है, क्योंकि यह जाति के आधार पर यह स्थिति आयी है, यह ठीक नहीं। नगरों में नहीं, ग्रामों में रहने वालों की स्थिति क्या है? यह हमें सोच लेना चाहिए। कुछ भिन्नताएँ हैं तो ठीक कर लेना चाहिए। हम स्वयंसेवक हैं, सहज ही हमारे मन में जाति केलिए कोई स्थान नहीं रहता है।

संघ के कार्यक्रमों में बिना जाति का नाम लिए सब स्वयंसेवकों के साथ समभाव से व्यवहार करने का संस्कार संघ ने हमको सिखाया है। यह संस्कार केवल संघ जीवन में ही नहीं बल्कि व्यवसाय जीवन में भी आचरण करने की अपेक्षा संघ करता है।

हमारे घर कोई स्वयंसेवक या कोई कार्यकर्ता आते हैं तो जाति के बारे में न सोच कर जिस प्रकार समभाव से व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार का व्यवहार जो स्वयंसेवक नहीं है, जो अन्य हिंदू हैं, उनके साथ करना चाहिए। घर में भोजन खिलाते समय भी कुछ लोगों को पत्तलों में, कुछ लोगों को थालियों में खिलाते हैं। कुछ लोगों को तो अपने पत्तल स्वयं को ही उठाना पड़ता है, जो ठीक नहीं है।

एक बार इतिहास की ओर देखें....

हजार वर्ष पहले तमिलनाडु में रामानुज का जन्म हुआ है। ब्राह्मण जाति में जन्म लेने पर भी जन्मतः उनको समभाव प्राप्त हुआ है। उनके पाँच गुरु हैं, उनमें ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर भी हैं। रामानुज की अनुपस्थिति में एक बार ब्राह्मणेतर गुरु उनके घर भोजन के लिए आये हैं। गुरुजी को भोजन कराने केलिए रामानुज ने अपनी पत्नी को खबर भेजी। उसने तो गुरुजी को तो भोजन खिलाया, लेकिन गुरुजी से पत्तल उठाने को कहा। यह अतिथि मर्यादा नहीं। रामानुज की पत्नी जाति के बारे में अधिक सोचती है।

रामानुज ने अपनी पत्नी से कहा कि यह ठीक नहीं है, लेकिन पत्नी में कोई परिवर्तन नहीं आया। इसी प्रकार तीन बार गलती हुई। अंत में रामानुज ने पत्नी को मायके भेज कर उन्होंने सन्यास ग्रहण किया। तब से रामानुज समतामूर्ति रामानुजाचार्य बने। उनकी ही प्रेरणा से गुंटूर जिले के पलनाडु में ब्रह्मन्ना/ब्रह्मनायडू ने चटार्ई भोजन (सब जतियों के साथ सहपंक्ति भोजन) की व्यवस्था हजारवर्ष पहले की है।

5250 वर्षों के पहले की बात है द्वापर युग। उसी समय में ही वर्णाधिक्य की भावना जाग रही है। महाभारत युद्ध के निवारण के लिए श्रीकृष्ण संधि वार्ता लेकर धृतराष्ट्र के दरबार में आया है। चर्चाएँ हो रहीं थीं, सायं काल हुआ था, चर्चाएँ दूसरे दिन के लिए स्थगित की गयी थीं। श्री कृष्ण जन्मतः क्षत्रिय हैं। पाला-पोसा गया यादवों के घर में। भोजन के लिए विदुर के घर गये हैं। वर्ण की दृष्टि से विदुर शूद्र हैं। उसीकाल में श्री कृष्ण ने वर्णान्तर भोजन किया है। क्या श्रीकृष्ण का जाति बहिष्कार करें क्या?

हमारे घर में शुभ कार्य होता है। अन्यान्य जाति के लोग आते हैं। जातियों के अनुसार भोजन पंक्तियों की व्यवस्था करें क्या? या सब को एक ही पंक्ति में बिठायें? आप ही सोचिए। उपर्युक्त बातें नगरों में आसान ही हैं, लेकिन ग्रामों में कठिन हैं, फिर भी यह इसे आचरण में लाना है। हिंदु सब भाई हैं, यह केवल नारा मात्र नहीं है। परिवार में समरसता के आचरण का मंत्र और तंत्र है। नारों से नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को मनसा वाचा कर्मणा समरसता का आचरण करना है। प्रथमतः अपना घर ही आचरण का केंद्र बनना चाहिए।

- राष्ट्रीय संयोजक, सामाजिक समरसता मंच, हैदराबाद

समीक्षा

समीक्षा के नये आयाम



- प्रो. डॉ. शरदनारायण खरे

समीक्षा के नये आयाम (भाग-2) स्वनामधन्य कवि, गीतकार, नवगीतकार, मुक्तककार व गजलकार पं. गिरि मोहन गुरु के काव्य के भावपक्ष व कलापक्ष का सूक्ष्म विश्लेषणात्मक प्रस्तुति से परिपूर्ण एक ऐसी कृति है, जिसमें देश के श्रेष्ठ 22 साहित्यकारों व समीक्षकों ने पं. गुरु के काव्य-सृजन पर विशिष्टतापूर्वक अपनी कलम चलाई है।

ज्ञातव्य है कि समीक्षा के नये आयाम (भाग-2) के उपरान्त यह समीक्षा के नये आयाम (भाग-2) आया है। इसमें डॉ. उदयभानु हंस, चन्द्रसेन विराट, डॉ. गार्गीशरण मिश्र, डॉ. महेश दिवाकर, डॉ. रामकुमार बेहार, प्रो. सोनवणे राजेन्द्र 'अक्षत', श्यामबिहारी सक्सेना व डॉ. रघुनंदन प्रसाद सीठा, जैसे नामचीन साहित्यकारों व अक्षरसाधकों का पं. गुरु की काव्य रचनाओं का अधिकार पूर्वक

किया गया सार्थक व सजीव मूल्यांकन है। जो सार्थक होने के साथ ही काफी सटीक भी है।

समीक्षा के नये आयाम (भाग-1) में भी अनेक नामचिह्न रचनाकारों का विश्लेषण शामिल था, प प्रतीत होता है कि मानो मूल्यांकन अपूर्ण रहा गया था, इसलिए यह भाग-2 प्रकाशित किया गया है। वैसे भी पं. गिरिमोहन गुरु पर जितना भी लिखा जाये, कम है।

यह तो स्पष्ट व सिद्ध प्रायः है कि पं. गिरिमोहन गुरु इस समय जिस उत्कृष्टता व विशिष्टता से काव्य-सृजन कर रहे हैं, वह वास्तव में अभिनंदनीय है। उन्होंने काव्य की प्रायः हर विधा पर लिखा है। भाषा, छंद, अभिव्यक्ति सभी पर पं. गुरु की पकड़ है। पं. गुरु के मुक्तकों में अर्थ, कथ्य, लालित्य, शिल्प, भाव, लोक की गहराई, सूक्ष्म एवं मार्मिक दृष्टि चिन्तन की गंभीरता सभी कुछ है।

डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल', पं. गुरु के गजल संग्रह का दूसरा किनारा की गजलों के सम्बन्ध में लिखते हैं ने अपनी गजलों में सामाजिक व राजनैतिक विद्रूपताओं सशक्ततापूर्वक अभिव्यक्ति की है। उदाहरणार्थ -

जो भी बनता है पसीने का लहू,
तोंदवालों के काम आता है।
आज हर होंठ से हँसी गायब,
जैसे कमरे से रोशनी गायब।

मराल जी लिखते हैं- “यह यथार्थ है कि नीति और भक्ति को अभिव्यक्ति देने वाले गुरु ने बालरामायण, श्री हनुमान शताष्टक, श्री द्वादश ज्योतिर्लिंग चालीसा, श्रीनव दुर्गा चालीसा, गृहस्थगीता, बाल बोधगीता आदि ग्रंथों की रचना भी की है।”

सुपरिचित विद्वान डॉ. महेश दिवाकर लिखते

हैं, वस्तुतः गिरिमोहन गुरु के लेखन का उद्देश्य स्पष्ट है, अपनी बात को अपने दर्द के अपनी पीड़ा को, अपनी चिन्ता को, वे बड़ी सरल भाषा शैली में अभिव्यक्ति देते हैं- “आदमी से आज किसको प्यार है, आदमी होना बड़ा दुश्वार है। जहाँ गजल का दूसरा किनारा नामक काव्य कृति में उनकी भावनाएँ और सामयिक चिन्ताएँ काव्य रूप में निःसृत हुई हैं वहीं मनुष्य की इन चिन्ताओं और अहंकारजन्य विषमताओं के उन्मूलन के लिए ही तो उन्होंने सतत् साहित्य के रूप में प्रभृति भक्ति भावना अनुपूरित प्रेरक कृतियों को सृजन किया है।”

पं. गिरिमोहन गुरु की काव्य कृतियों को देश के साहित्यकारों ने भरपूर सराहा है। इस कृति में शामिल साहित्य समीक्षकों के आलेख यह सिद्ध करते हैं कि पं. गुरु की काव्य रचनाएँ कला व भाव दोनों पक्षों की दृष्टि से अत्यंत सारगर्भित हैं। उनमें समकालीनता है, तो चेतना के स्वर भी विद्यमान हैं। उनमें सरसता है, तो अभिव्यक्ति का पैनापन भी है।

परिशिष्ट में साहित्यकारों के अभिमत तथा पत्रांश दिये जाने से समीक्षा के आयाम परिपूर्णता को प्राप्त हो गये हैं। यह कृति पं. गिरिमोहन गुरु के काव्य सृजन की सूक्ष्मताओं से हमें परिचित कराती है। मैं पं. गुरु की ऊर्जस्विता को नमन करता हूँ। कृति का मुखपृष्ठ सादा पर अच्छा है, अशुद्धियाँ नहीं हैं, छपाई उत्तम है। कुल मिलाकर यह कार्य अभिनंदनीय है।

समीक्ष्य कृति - समीक्षा के नये आयाम (भाग-2)

संपादक - डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय

मूल्य - 150 रुपये

संस्करण - 2012

प्रकाशक - शिवसंकल्प साहित्य परिषद, होशंगाबाद

- विभागाध्यक्ष इतिहास, शासकीय महिला महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.) 481661

प्रेम के जरिए मुक्ति का मार्ग खोजती है महेन्द्र गगन की कविताएँ-संतोष चौबे

स्व. महेन्द्र गगन का नया काव्य संग्रह 'पंद्रह मिनट पीछे' हुआ लोकार्पित

महेन्द्र गगन एक ऐसे कवि हैं जो धरती की समझ विकसित करते हुए दार्शनिक तथा आध्यात्मिक आकाश तक पहुँचते हैं और इस यात्रा में पाते हैं जीवन रस में पगी कुछ कविताएँ, जहाँ प्रेम भी है, घर-परिवार भी है, सामाजिक संवेदनाएँ भी हैं और हैं मित्रों के साथ बिताये कुछ उन्मुक्त क्षण।

महेन्द्र गगन की कविताएँ प्रेम के माध्यम से मुक्ति का मार्ग खोजती हुई कविताएँ हैं, और यह प्रेम आगे चलकर एक व्यापक प्रेम में परिवर्तित होता है, उनकी सामाजिक दृष्टि में एवं मनुष्य-मात्र से प्रेम में प्रतिबिम्बित होता है। उनका दूसरा गुण है प्रगतिशील राजनैतिक सांस्कृतिक परम्परा से उनका जुड़ाव। यह परम्परा उनके प्रगतिशील मूल्यों को प्रकट करती है।

उक्त विचार वरिष्ठ, कवि, संपादक पहले-पहल एवं विश्व रंग परिवार के वरिष्ठ सदस्य रहे स्व. महेन्द्र गगन के नये काव्य संग्रह 'पंद्रह मिनट पीछे' के लोकार्पण समारोह की अध्यक्षता करते हुए श्री संतोष चौबे, वरिष्ठ कवि-कथाकार, निदेशक, विश्व रंग एवं कुलाधिपति, रबीन्द्रनाथ टैगोर

विश्वविद्यालय ने व्यक्त किये।

इस अवसर पर संतोष चौबे ने महेन्द्र गगन के साथ बिताए कई अविस्मरणीय पलों को प्रकट करते हुए उनके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अनमोल बातें साझा की।

महेन्द्र गगन के इस ताजा कविता संग्रह 'पंद्रह मिनट पीछे' का प्रकाशन आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल द्वारा किया गया है।

उल्लेखनीय है कि यह लोकार्पण समारोह स्व. महेन्द्र गगन की धर्मपत्नी श्रीमती मीना भाटी की आत्मीय उपस्थिति में आयोजित किया गया।

इस अवसर पर देश की सुप्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिका 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' की कार्यकारी संपादक डॉ. विनीता चौबे ने महेन्द्र गगन के व्यक्तित्व पर केंद्रित स्वरचित बहुत ही मार्मिक कविता का भावपूर्ण पाठ किया। आपने इस अवसर पर कई आत्मीय संस्मरण भी सुनाए।

दिल्ली से आये वरिष्ठ साहित्यकार एवं आलोचक डॉ. अजय तिवारी ने कहा कि महेन्द्र गगन सरल और सहज लिखते



थे। सरलता और सहजता बहुत कठिन कार्य है। महेन्द्र गगन अपनी कविता में सहजता से बड़ी बात कहते हैं- “दिल का रिश्ता यारों से था, अब औजारों से हुआ।” वे सचमुच में दुरुह सहजता के कवि थे। यह सहजता कठिन साधना से प्राप्त होती है। महेन्द्र गगन मालवा के थे। मालवा की लोक संस्कृति की सौंधी महक उनकी कविताओं में रची बसी है। लोक संस्कृति से जुड़े कवि ही ऐसी रचनाओं की रचना कर सकते हैं।

वरिष्ठ कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि महेन्द्र गगन सहजता, विनम्रता, पारदर्शिता और स्वाभिमान के गुणों से समृद्ध कवि थे। सहज कविता एकाएक संभव नहीं होती। उसके लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

आपने आगे कहा कि हमारा समय चालाक कविता का समय है। कई लोग एक मुहावरा पकड़ते हैं और एक कविता संग्रह छाप मारते हैं। लेकिन चालाक कविताओं से एक न एक दिन पर्दा उठ जाता है और चालाक कविता का ‘राम नाम सत्य’ हो जाता है।

महेन्द्र गगन ने चले हुए मुहावरों पर कविताएँ नहीं लिखी। ऐसा करने के लिए बड़ा जिगर चाहिए जो कि महेन्द्र गगन के पास था। वे जब लिखते हैं- “जहाँ भी हुआ, अपने होने पर शर्मिंदा नहीं हुआ।” यह आत्मविश्वास भरी स्वीकारोक्ति बहुत बड़ी बात।

वरिष्ठ कथाकार एवं वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अध्यक्ष मुकेश वर्मा ने कहा कि महेन्द्र गगन जिस तरह अपने निजी जीवन में रिश्तों को महत्व देते थे उसी तरह वे अपनी रचनाओं में भी रिश्तों को रेखांकित करते थे।

वरिष्ठ कवि ध्रुव शुक्ल ने महेन्द्र गगन से जुड़े कई मार्मिक प्रसंगों को सुनाते हुए कहा कि वह बहुत ही सहृदयता के साथ सभी को अपना बना लेते थे। यह अपनत्व और सहृदयता उनकी रचनाओं में भी परिलक्षित होती है। कविता में वर्णन की व्यंजना ही पर्याप्त होती है।

यह बात महेन्द्र गगन की कविताओं में मौजूद है।

वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता ने कहा कि महेन्द्र गगन सामाजिक सरोकारों, मानवीय मूल्यों को न सिर्फ अपनी कविताओं में शिद्ध के साथ उकेरते थे वरन अपने निजी जीवन में भी उसे अमल में लाते थे। उनके साथ बिताएँ एक-एक पल हमारे जीवन की अनमोल विरासत है।

वरिष्ठ रचनकार डॉ. रेखा कस्तवार ने महेन्द्र गगन के रचना संसार एवं व्यक्तित्व पर विस्तार पूर्वक विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वे सबके सुखदुःख में हमेशा सबसे पहले खड़े मिलते थे। उनके रचना संसार के व्यापक फलक में भी ये रिश्ते सितारों की मानिंद हमेशा जगमगाते रहेंगे।

इस अवसर पर युवा कथाकार एवं आईसेक्ट पब्लिकेशन के संपादक कुणाल सिंह ने महेन्द्र गगन की चुनिंदा चर्चित कविताओं का बहुत ही मर्मस्पर्शी पाठ किया।

कुणाल सिंह ने महेन्द्र गगन की सुपुत्री यामिनी गगन द्वारा लिखित अपने पिता पर केंद्रित लेख ‘पिता ही पूरी दुनिया’ का भी पाठ किया।

लोकार्पण समारोह के अंत में सभी के प्रति आभार डॉ. संगीता जौहरी, प्रति-कुलपति, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा व्यक्त किया गया।

कार्यक्रम का संयोजन आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम, युवा कथाकार कुणाल सिंह, संजय सिंह राठौर तथा मानविकी एवं उदार कला संकाय की टीम द्वारा किया गया। तकनीकी संयोजन रोहित श्रीवास्तव, डॉ. रमेश विशवकर्मा एवं विश्वविद्यालय की स्टूडियो टीम द्वारा किया गया।

इस अवसर पर बड़ी संख्या में महेन्द्र गगन जी के पारिवारिक सदस्य, मित्रगण विश्वविद्यालय के सभी फेकल्टी सदस्य एवं विद्यार्थीगण भी उपस्थित रहे।

रिपोर्ट लेखन : संजय सिंह राठौर ●

पाठक-समय

प्रतिष्ठित मासिक 'साहित्य समय' का गतांक मिला, हर बार की तरह अंक स्मरणीय बन गया। पूर्व प्रेषित क्षणिकाएँ एवं कहानी यथा समय प्रकाशित करने का कष्ट करें।

– रमेश मनोहरा, रतलाम (म.प्र.)

सुप्रतिष्ठित 'साहित्य समय' का पिछला अंक प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर आनंद की अनुभूति हुई। आभार। 'साहित्य समय' के आगामी अंक में प्रकाशनार्थ मैं अपने दो स्वरचित, मौलिक, अप्रकाशित गीत प्रेषित कर रहा हूँ। इनमें से जो भी रचना प्रकाशन योग्य उपयुक्त लगे। उसे प्रकाशित करने की कृपा करें।

– राजेंद्र बहादुर सिंह 'राजन', रायबरेली (उ.प्र.)

महोदय, चर्चित 'साहित्य समय' मासिक का गतांक मिला, पत्रिका मुझे भायी, इसलिए राजा चौरसिया के माध्यम से इसकी द्विवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर ली है। चूँकि मैं भी एक कवि हूँ और मेरी रचनाएँ राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। मैं साहित्य समय में प्रकाशनार्थ कुछ दोहे भेज रहा हूँ। दोहे स्वरचित, मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित हैं। यदि दोहे पत्रिका के स्तरानुकूल हों, तो कृपया स्थान देकर उपकृत करें।

– अश्विनी कुमार पाठक, जबलपुर (म.प्र.)

आदरणीय गोपेश वाजपेयीजी, सादर, जय श्रीकृष्णा, आपका पत्र प्राप्त हुआ। 'साहित्य समय' के अगस्त अंक में मेरा आलेख 'आत्म विकास के सोलह सूत्र' प्रकाशित हुआ है। हमारी पत्रिका 'अध्यात्म अमृत' हम आपको नियमित भेज रहे है। नया अंक अक्टूबर के अंत तक प्रकाशित होगा, आपको प्रेषित करेंगे। मेरा एक नया लेख 'पी.एम.सी.बैंक घोटाला' निर्दोष कार्यकर्ताओं के साथ अन्याय क्यों आपकी लोकप्रिय पत्रिका में प्रकाशन हेतु प्रेषित कर रहा हूँ। कृपया आप इसे जनहित में अवश्य प्रकाशित करने का कष्ट करें। यह आज की महत्वपूर्ण समस्या पर लिखा गया है, तथा बहुत ही सटीक है। 'दीपपर्व' की हार्दिक शुभकामनाओं सहित।

– कृष्णचंद्र टवाणी, किशनगढ़ (राजस्थान)

आदरणीय सस्नेह अभिवादन, पठनीय 'साहित्य समय' में दीपावली पर्व पर दो रचनाएँ प्रेषित कर रही हूँ। प्रकाशनार्थ कष्ट के लिए क्षमा।

– उषा किरण, बुलढाणा (महाराष्ट्र)

पत्रिका 'साहित्य समय' में प्रकाशनार्थ कुछ रचनाएँ संलग्न कर रहा हूँ, स्वीकार करने का कष्ट करें। आशा है आप सब स्वस्थ, आनंद व उत्साह से परिपूर्ण हैं। दीपपर्व की अनेकानेक मंगलकामनाओं के साथ।

– सीताराम गुप्ता, दिल्ली

साहित्यिक झलकियाँ



‘साहित्य समय’ परिवार भोपाल की विनम्र श्रद्धांजलि..



प्रो. पुष्पिता अवस्थी को हिन्दी भूषण सम्मान



जन अभियान परिषद हेतु सामाजिक समरसता पाठ्यक्रम समिति



प्रो. नीतेश, खरगोन को ‘शब्दों के सेतु’ भेंट करते हुए कवि गोपेश



अमेरिका इकाई में काव्य पाठ



SHIVAM BUILDCON

‘दीपावली’

की हार्दिक शुभकामनाएँ

‘गुणवत्ता हमारी जिम्मेदारी’

कंस्ट्रक्शन जो आप चाहें



H.No.-57, Soumya Estate B.D.A. Road Awadhpuri, Khajurikalan, Bhopal (M.P.)

E-Mail : shiwi91@gmail.com | Mo. : 7000310484, 9754849174